भारत विभूति

लेखक—

श्री आचार्य एस० एन० सान्याल, एम० ए०

प्रकाशक

सूरज बलराम साहनी एन्ड संज़

एस्प्लेनेड रोड, :: दिल्ली।

प्रकाशक:—

कृष्णगोपाल साहनी,

अध्यक्ष सूरज बलराम साहनी एन्ड संज,

दिल्ली।

मूल्य दो रुपया

मुद्रक:—

इण्डियन प्रेस,

दिल्ली।

प्राक्कथन

यह गौरव केवल भारत माँ को ही प्राप्त है कि इसकी गोद सदा ऐसे वीर पुत्रों से भरी रही है, जिन्होंने अपनी जननी जन्मभूमि के लिए सांसारिक वैभव तो क्या; प्राणों तक का उत्सर्ग किया है, जिन्होंने अपनी इस माँ की दीन, पतित, निर्बल और असमर्थ सन्तान को सबल और सजीव बनाने के लिए अपना यह लोक तो क्या, परलोक तक भी न्योछावर कर दिया है, जिन्होंने परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ी हुई माँ के उद्विग्न और व्याकुल मुख-मण्डल पर स्वच्छता और स्वतंत्रता की मुस्कान देखने के लिए कारा की काल-कोठरियों को प्रभुमन्दिर और कैद की कड़ी-से-कड़ी यातनाओं को भगवान का प्रसाद और माता का उपहार समझा है। जिनका हृदय इतना उदार और विशाल रहा है कि वे संसार की उन्नति में अपनी उन्नति समझते थे, जो लोक-हित में अपने प्राणों को इतना तुच्छ समझते थे कि फाँसी के तख्ते पर चढ़कर भी मुस्कराते रहे: जो प्रतिकार और प्रतिशोध की भावनाओं से इतने दूर रहे कि वह स्वयं विष पीकर भी संसार को अमृत पिलाते रहे। निस्सन्देह ऐसे कर्मठ वीरों के जीवन ऐसे प्रकाश-स्तम्भ हैं, जिनसे अनन्त काल तक समस्त विश्व को आलोक मिलता रहेगा।

आज इन्हीं प्रकाश के जीवन-चरित्रों द्वारा अपने देश के भावी कर्णधारों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए यह छोटी-सी पुस्तक प्रस्तुत कर रहा हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि ये नन्हीं आत्माएं इन महान आत्माओं से प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन पाकर "दीप से दीप जगे" की प्रसिद्ध कहावत को चरितार्थ करेंगे।

एस० एन० "सान्याल"

विषय सूची

—:o:—

: एक :

दादाभाई नौरोजी

जिस समय सारा देश दासता की दृढ़ जंजीर में जकड़ा हुआ था, विदेशी शासन इस देश का भीषण अर्थ-शोषण कर इसे दरिद्रतर बनाता जा रहा था और अपने देश को धनाढ्यतर, ऐसे समय में दादाभाई नौरोजी नामक एक पारसी युवक ने वह साहस दिखाया जो इस पदाक्रान्त देश के लिए दुर्लभ था। उसने स्वराज्य का वह शंख फूंका जिसकी ध्वनि सारे देश में व्याप्त हो गई, और ब्रिटेन द्वारा भारत के आर्थिक शोषण का वह ब्योरा शिक्षित हिन्दुस्तानियों के सामने पेश कर दिया जिसे पढ़कर लोगों के कान खड़े हो गये और ब्रिटिश सरकार की राजनीति और अर्थनीति दोनों को लोग समझने लगे।

भारतमाता के इस सपूत ने सबसे पहले अपने देश को जगाया और बताया कि उसे किस तरह अंग्रेज़ लूट रहे हैं।

हिन्दुस्तान का यह सर्वाग्रगण्य प्रहरी पहले एक अध्यापक था। गणित-शास्त्र में दादाभाई की अद्भुत गति थी। ग्रेजुएट हो जाने के बाद ऐसा प्रतीत होता था कि वे अर्थशास्त्र के ही अध्ययन-अध्यापन में अपना जीवन व्यतीत करेंगे। पर उनका जीवन एल्फिन्स्टन कालेज की प्रोफेसरी के लिए ही नहीं था। गणित-शास्त्र और प्रकृति-विज्ञान का अनुराग उन्हें देश-सेवा के उच्च कार्य से न रोक सकता था। उल्टे यह गणित ज्ञान उनके राजनीतिक प्रचार-कार्य में सहायक हुआ। समाज-सुधार के कार्यों—विशेषतः स्त्री-शिक्षा आदि के कामों का भी उन्होंने

312

श्रीगणेश किया जिसे आगे चलकर राजा राममोहनराय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ने अग्रसर किया। बम्बई में सर्वप्रथम कन्या पाठशाला की नींव उन्होंने ही डाली। समाज-सुधार के लिए उन्होंने क्रमशः इन संस्थाओं की स्थापना की—(१) साहित्यिक और वैज्ञानिक समाज, (२) बम्बई एसोसिएशन, (३) फरामजी कावसजी इंस्टीट्यूट; (४) ईरानी फण्ड, (५) विधवा विवाह सभा, (६) पारसी व्यायामशाला, (७) विक्टोरिया और एलबर्ट म्यूज़ियम। इन संस्थाओं की न केवल उन्होंने स्थापना कर दी थी प्रत्युत् उनके संचालन की दृढ़ व्यवस्था कर दी। इन संस्थाओं का अस्तित्व किसी-न-किसी रूप में अब भी है।

विदेश-गमन

लगभग दस वर्ष (१८४५ से १८५५) तक इस प्रकार अध्यापन-कार्य के साथ-साथ उन्होंने देश-हित-सम्बन्धी सामाजिक कार्य किये। किन्तु दादाभाई की असाधारण प्रतिभा और देशसेवा की भावना यहीं तक सीमित रहने वाली नहीं थी। वे अब यह सोचने लगे कि वे देश में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने के लिए किसप्रकार अधिक प्रयत्नशील हों। उन दिनों बम्बई की कामा एण्ड कम्पनी एक प्रसिद्ध व्यापारिक पेढ़ी (फर्म) थी जिसके हिस्सेदार बड़े-बड़े अमीर पारसी थे। कम्पनी का कारबार बढ़ते देख उसके संचालकों की इच्छा हुई कि विलायत में भी कम्पनी की शाखा खोली जाय। इसके लिए उन्होंने योग्य व्यक्ति की तलाश की। उन दिनों नौरोजी का गणित तथा अर्थ-स्त्र का ज्ञान प्रसिद्ध हो चुका था। इसलिए संचालकों की दृष्टि उनकी ओर गई। उनकी कार्य-संचालन-क्षमता के भी सब कायल थे। कम्पनी के हिस्सेदार संचालकों ने उनसे अनुरोध किया कि वे इंग्लैंड में रहकर कम्पनी का प्रतिनिधित्व कर सकें तो बड़ी अच्छी बात हो। दादाभाई बड़े दूरदर्शी थे, इसलिए उन्होंने सुअवसर देख कम्पनी का

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इंग्लैंड पहुंच कर उन्होंने कम्पनी का काम तो किया ही, पर साथ ही वहां के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों से भी मिले—सभा, सोसाइटियों और राजनीतिक चर्चाओं में भाग लेने लगे। कुछ ही दिनों में वे अंग्रेज जनता के समक्ष भारत की स्थित और शासन तथा प्रजा के सम्बन्धों पर भाषण करने लगे। शासन की त्रुटियों को बताने में उन्होंने कुछ भी हिचकिचाहट नहीं की। उन्हीं दिनों लन्दन में उन्होंने हिन्दुस्तानियों की पहली सभा कायम की। इसके अतिरिक्त १८६७ ई० में उन्होंने ईस्ट इंडियन एसोसियेशन नाम की एक और संस्था को भी जन्म दिया। इस दूसरी संस्था में सभी भारतीय सम्मिलित हो सकते थे, पर उन का सदा भारत हितैषी बने रहना इसकी पहली शर्त थी। इस प्रकार इस सभा में कई न्यायशील अंग्रेज भी शामिल हो गये और भारतीय राजनीतिक विषयों पर उनसे हिन्दुस्तानियों का विचार-विनिमय होने लगा। इस सभा ने एक पत्र भी प्रकाशित किया जिसके द्वारा दादाभाई अपने विचार निर्भीकतापूर्वक प्रकट करने लगे। इस प्रकार इंग्लैंड में भारतीय राजनीतिक आन्दोलन का सूत्र-पात दादाभाई ने ही सर्व-प्रथम किया।

यद्यपि दादाभाई कर्त्तव्य के नाते कम्पनी के प्रतिनिधित्व का काम बराबर करते रहे; पर उनकी देशभक्ति की भावना इतनी प्रबल हो चुकी थी कि वे उसमें ही अपना अधिकांश समय लगाना चाहते थे। ऐसी अवस्था में उनका व्यापारिक काम में लगे रहना असम्भव होगया।

इंग्लैंड के राजनीतिक जीवन में अब दादाभाई का प्रवेश हो चुका था। वहां की साहित्यिक और वैज्ञानिक क्रियाशीलताओं में भी उनकी बड़ी दिलचस्पी हो गयी। उनकी योग्यता और गतिविधि देखकर वहां के शिक्षा-विभाग के लोग भी उनकी ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने

लन्दन के यूनिवर्सिटी कालेज में गुजराती भाषा के अध्यापन का कार्य करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया। लन्दन विश्वविद्यालय के सिनेट के भी वे सदस्य बना लिये गये। कई अन्य साहित्यिक और वैज्ञानिक संस्थाओं से भी उनका सम्बन्ध स्थापित हो गया।

राजनीतिक, साहित्यिक और वैज्ञानिक विषयों से अनुराग रखने वाले दादाभाई अब कामा कम्पनी के कार्य से अलग हो गये। उन्होंने कुछ अपना कारबार भी खोला; पर राजनीति में ही अधिक समय लगाने तथा एक मित्र को अधिक आर्थिक सहायता दे देने के कारण उन्हें घाटा हो गया।

स्वदेश आगमन

१८६९ ई० में दादाभाई स्वदेश लौटे। सर फीरोजशाह मेहता के प्रयत्न से बम्बई में आपका शानदार स्वागत हुआ, जिसमें सभी जाति के लोग सम्मिलित हुए। एक विशाल सभा करके दादाभाई को अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया। जिसमें उनके कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी। उन्हें ३,०००) की एक थैली भी भेंट की गयी जिसे उन्होंने सार्वजनिक कार्यों में खर्च कर दिया।

१८७३ ई० में दादाभाई फिर इंग्लैंड गये। इस समय वे कम्पनी आदि के व्यापारिक बन्धनों से पूर्णतः मुक्त थे। इस बार वे इंग्लैंड में भारत के बारे में वास्तविक ज्ञान प्रसारित करने और लोकमत जाग्रत करने की दृष्टि से गये। उन्होंने इंग्लैंड पहुँचते ही इस बार वहां की फासेट कमेटी से सम्बन्ध स्थापित किया। यह संस्था प्रसिद्ध अर्थशास्त्र-वेत्ता श्री फासेट ने भारत की आर्थिक दशा का निरीक्षण करने के लिए स्थापित की थी। दादाभाई ने इस कमेटी के सामने भारत की दरिद्रता का वर्णन करते हुए अकाट्य युक्तियों और तर्क से यह सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी की औसत वार्षिक आय २०)से अधिक नहीं है और औसतन

हर आदमी से ३) वार्षिक से कम कर (टैक्स) नहीं लिया जाता। इस अश्रुतपूर्व वक्तव्य से कुछ अंग्रेजों के कान खड़े हो गये और कुछ ने उनकी यह बात हँसी में उड़ा दी। पर दादाभाई इस मज़ाक से चुप होनेवाले नहीं थे। उन्होंने अर्थशास्त्र का काफी अध्ययन किया था और अपनी बात की पुष्टि के लिए उन्होंने कई सभाओं में भाषण दिये और पत्रों में लेख भी लिखे। इन लेखों का संकलन कर बाद में उन्होंने जब उसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया तो उससे इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के राजनीतिक क्षेत्र में तहलका मच गया। १८८० ई० में इस पुस्तक का संशोधित संस्करण भी प्रकाशित हुआ। इसके पाठकों को भारत के सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान हो गया और तभी से बहुत से अंग्रेज दादाभाई को "भारतीय असन्तोष का पिता" कहने लगे।

दादाभाई के इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि भारत सरकार यहाँ आर्थिक दशा की जाँच करने को बाध्य हो गयी। पार्लमेंट समिति के जो सदस्य दादाभाई की बातों को हँसी में उड़ाते थे, उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि लार्ड रिपन के शासन-काल में भारतीय अर्थ-सचिव ने भी अपनी रिपोर्ट में यह साबित कर दिया कि हिन्दुस्तान के प्रत्येक व्यक्ति की वार्षिक आमदनी की औसत २७) से अधिक नहीं है। इससे इंग्लैण्ड और भारत में दादाभाई के अर्थज्ञान की धाक जम गयी।

फिर स्वदेशागमन

जिन दिनों दादाभाई इंग्लैण्ड में भारतीय आर्थिक-स्थिति के बारे में आन्दोलन कर रहे थे, उन्हीं दिनों बड़ौदा के तत्कालीन नरेश महाराजा मल्हारराव गायकवाड़ की दृष्टि उन पर पड़ी। उन्होंने दादाभाई को अपने राज्य का दीवान नियुक्त कर दिया, क्योंकि उन दिनों राज्य की दशा खराब थी और उसे सँभालने के लिए किसी योग्य व्यक्ति

की आवश्यकता थी। १८८४ ई० में स्वदेश लौटकर दादाभाई ने बड़ौदा राज्य के दीवान का कार्य-भार ग्रहण कर लिया और अपनी योग्यता के बल पर उन्होंने इस राज्य के शासन की बुनियाद ऐसी मज़बूत बना दी कि उसी के बल पर वह अब तक उन्नत रूप में कायम रहा।

पर ऐसा मेधावी और असामान्य नेता किसी राज्य की दीवानी कब तक करता। उन्होंने अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। बम्बई कार्पोरेशन से भी इन्होंने अपना सम्बन्ध जोड़ा और १८८५ तक उसका कार्य करते रहे। उन्होंने अपने असामान्य अर्थज्ञान के बल पर कार्पोरेशन के आय-व्यय के निरीक्षण में एक बड़ी भारी भूल पकड़ी जिसके कारण बम्बई कार्पोरेशन १० लाख की हानि और बदनामी से बच गया।

कांग्रेस का जन्म

१८८५ ई० में राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस की स्थापना में श्री ह्यूम तथा अनेक देशभक्त भारतीयों का हाथ दादाभाई ने बँटाया। यद्यपि उस समय संस्था की स्थापना "प्रति वर्ष भारत के राजनीतिज्ञों ने एक स्थान पर एकत्रित हो शासनप्रणाली के बारे में चर्चा करने और उसकी त्रुटियाँ भारत-सरकार पर प्रकट करने" के लिए हुई थी; पर दादाभाई ने इसके द्वारा भारत के उद्धार का स्वप्न देख लिया था इसलिए उसकी स्थापना के दिन से लेकर अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक उसकी सेवा में लगे रहे। कांग्रेस के दूसरे (कलकत्ता) अधिवेशन के सभापति भी आप ही चुने गये। पहले अधिवेशन का सभापति आपने ही श्री रमेशचन्द्र बनर्जी को बनाया था।

पार्लमेण्ट की सदस्यता

१८८६ ई० में दादाभाई ब्रिटिश पार्लमेण्ट की सदस्यता के लिए

उम्मेदवार खड़े हुए, पर आपको २९९६ मत (वोट्स) मिले जिससे उस वर्ष विजय न मिल सकी। फिर भी आपका विश्वास था कि पार्लीमेण्ट का सदस्य बन कर वह भारतीय प्रश्नों पर वाद-विवाद करके ब्रिटिश लोकमत को भारत की ओर अधिक आकृष्ट कर सकेंगे, इसलिए आप उस ओर प्रयत्नशील रहे और १८९२ ई० के चुनाव में सेण्ट्रल फिन्सबरी के चुनाव क्षेत्र से ब्रिटिश पार्लीमेण्ट की कामन्स सभा के सदस्य चुन लिये गये। इस प्रकार उन्होंने भारत का मस्तक ऊँचा कर दिया। आपकी विलक्षण प्रतिभा, वक्तृत्व शक्ति और उच्च-भावना की कद्र अंग्रेज सदस्यों ने भी की और उन्हें विश्वास किया कि एक न एक दिन भारत को उनके प्रयत्नों का सुपरिणाम अवश्य मिलेगा और वह स्वराज्य प्राप्त करके रहेगा। दादाभाई के सदस्य चुने जाने के बाद अंग्रेज़ सदस्यों को भारत के बारे में अधिक चर्चा करने का अवसर मिला और इस प्रकार पार्लीमेण्ट में भारत उपेक्षित और नगण्य न रहकर मुख्य विचारणीय विषयों में हो गया। आपकी प्रेरणा से उस वर्ष (१८९३ ई० में) श्री हर्बर्ट पॉल नामक सदस्य ने कामन्स सभा में प्रस्ताव रखा कि हिन्दुस्तान की सिविल सर्विस सम्बन्धी शिक्षा इंग्लैंड के साथ-साथ हिन्दुस्तान में भी हुआ करे। यह प्रस्ताव पास तो हो गया; पर भारत-सरकार ने इसे खटाई में डलवा देने का पूर्ण प्रयत्न किया। फिर भी दादा-भाई का प्रयत्न इस अर्थ में व्यर्थ नहीं गया कि वे एक ऐसे गुर का बीजारोपण कर गये जो बाद में अंकुरित पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ। दादाभाई ने 'भारतीय पालीमेण्टरी कमेटी' और 'भारत-सम्बन्धी व्यय पर शाही कमीशन' भी नियुक्त कराया। दादाभाई इन दोनों ही के सदस्य बने। इस कमीशन के द्वारा आपने न केवल अपने अगाध अर्थ-ज्ञान और भारत की प्रमुखतम समस्या—दरिद्रता के कारणों को प्रकाश में लानेका श्रेय प्राप्त किया, प्रत्युत उसके द्वारा उन्होंने इस देश की वास्तविक और ठोस सेवा कर दिखायी।

फिर सभापति

पार्लीमेण्ट की सदस्यता के पश्चात् तो भारत के शिक्षितवर्ग में दादाभाई का नाम सर्वोपरि हो गया। इसके बाद १८९३ ई० में आप फिर (लाहौर) कांग्रेस के सभापति चुने गये। जुलूस में पंजाबी नवयुवकों ने दादाभाई की गाड़ी में घोड़े न जोड़ कर स्वयं उनकी गाड़ी खींच कर राष्ट्र और उसके कर्णधार के प्रति अपने असीम प्रेम का परिचय दिया। अपनी वक्तृता में दादाभाई ने स्वराज्य का जो मूल-मंत्र लाहौर में उच्चारित किया वह आगे चल कर राष्ट्रभक्त भारतीयों की ज़बान-ज़बान पर हो गया।

१८९५ ई० में वृटिश पार्लीमेण्ट से अलग होने के बाद भी दादाभाई इंग्लैंड में रह कर भारत-सम्बन्धी प्रचार-कार्य करते रहे और इस कार्य में अब उन्हें दूसरे प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् सर रमेशचन्द्र दत्त, सी० आई० ई० की सहायता मिल गयी। १८९८ ई० में दादाभाई ने वेलबी कमीशन के सामने गवाही देकर यह सिद्ध कर दिया कि भारत का तमाम धन अंग्रेज़ सरकार बाहर खींचती जा रही है इसलिए यह देश दिन-पर दिन दरिद्र होता जा रहा है। शासन यदि भारत का धन उसकी भलाई में वहीं खर्च करे तो देश घोर दरिद्रता का शिकार नहीं बन सकता क्योंकि उसकी उपज और उसके स्वाभाविक साधन प्रचुर मात्रा में हैं। इस विषय पर "अंग्रेज़ी शासन में भारत की दरिद्रता" नामक पुस्तक लिख कर आपने संसार के सामने अंग्रेज़ों की कूटनीति का भण्डा फोड़ कर दिया।

२४ मई १९०१ ई० में दादाभाई की अध्यक्षता में इंग्लैंडप्रवासी हिन्दुस्तानियों की एक महती सभा हुई जिसमें भारत की आर्थिक और कृषि-सम्बन्धी समस्याओं पर सारगर्भित भाषण और विचारों के आदान-प्रदान हुए तथा वृटिश सरकार का ध्यान इस देश की दुर्दशा की ओर आकर्षित किया गया।

१९०६ ई० में दादाभाई फिर [कलकत्ता] कांग्रेस के सभापति चुने गये। उस समय कांग्रेस नरम और गरम दलों में विभाजित हो रही थी, इसलिए दादाभाई जैसे सुदृढ़ नेता की आवश्यकता थी।

कांग्रेस का सभापति चुन लिये जाने और देशवासियों के अप्रतिम प्रेम प्रदर्शित करने पर दादाभाई अन्ततः इंग्लैंड से फिर स्वदेश लौटे। बम्बई में बड़ी धूमधाम से आपका स्वागत हुआ। उन दिनों भारत-सरकार की दमननीति से देश का एक दल विक्षुब्ध था। उसे दादाभाई के सामयिक भाषण से बड़ी आशाएँ बंधीं। दादाभाई ने इस अधिवेशन में कांग्रेस के भावी कार्यक्रम और ध्येय को स्पष्ट किया और उसका सुन्दर दिग्दर्शन किया।

१९०७ में दादाभाई फिर लन्दन गये। अब आपकी अवस्था ८२ वर्ष की हो चुकी थी और अपनी लम्बी श्वेत दाढ़ी और भव्य मुख-मण्डलयुक्त व्यक्तित्व से आप इंग्लैंड में भी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। अंग्रेज आपको "भारत का महान् वृद्ध पुरुष" [ग्रांड ओल्ड मैन आफ इण्डिया] कहा करते थे। आपकी अवस्था अब अधिक हो चुकी थी इसलिए विदेश का जलवायु अनुकूल नहीं पड़ा और आप बीमार रहने लगे। बाध्य हो आपको स्वदेश लौटना पड़ा। बम्बई आकर आप अन्धेरी के निकटस्थ समुद्र-तट वर्सोवा पर रहने लगे। १९१५ ई० में बम्बई विश्वविद्यालय ने दादाभाई को 'डाक्टर आफ लाज़' [एल-एल० डी०] की उपाधि प्रदान की।

अन्ततः ३० जून १९१७ ई० को आपका शरीरांत ९१ वर्ष की आयु में हो गया।

आरम्भिक जीवन

दादाभाई का जन्म बम्बई नगर में ४ सितम्बर १८२५ ई० को हुआ था। उनके पिता पारसियों के पुरोहित थे। यह वर्ग बुद्धि-जीवी तो

अवश्य होता है, पर धनवान् नहीं; क्योंकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी यही [पुरोहिताई] का काम किया करता है। दादाभाई के पिता नौरोजी भी आर्थिक संकट के शिकार थे। उस पर भी दादाभाई अभी चार ही वर्ष के थे कि उनके पिता का देहावसान हो गया। ऐसी अवस्था में उनकी माता ने बच्चे का भरण-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का काम बड़ी योग्यता, निपुणता और बुद्धिमत्तापूर्वक किया। विद्यार्थी जीवन में ही दादाभाई ने आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव किया था और किसी प्रकार अपनी असाधारण बुद्धि के बल पर निर्वाह और अध्ययन कर सके थे। यही कारण था कि भारत की दरिद्रता का उन्हें पर्याप्त अनुभव था और उसे दूर करने उसके लिए उनमें सच्ची लगन थी।

ऐसे नर-वीरों के द्वारा ही यह देश अपने लुप्त गौरव को प्राप्त कर सकता है।

: दो :

स्वामी दयानन्द सरस्वती

जिस समय देश में सदियों की सामाजिक रूढ़ियों ने अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लिया था और अन्ध-श्रद्धा ने समाज को घुन लगा दिया था, उन्हीं दिनों भारत में एक ऐसी विमल विभूति का प्रादुर्भाव हुआ जिसने अन्धकार के पर्दे को तर्क की कैंची से फाड़ दिया और अन्ध-श्रद्धा के जीर्ण रोग की जड़ उखाड़ दी। जो काम ऋषि-मुनि अपने उपदेशों से न पूरा कर सके थे, धर्माचार्य अपने प्रभाव से सम्पन्न न कर सके थे और विचारक जिसकी गहनता में पैठ न सके थे उसे इस बाल-ब्रह्मचारी विद्वान् सुधारक ने सम्पन्न कर दिखाया।

भारत का जन-समाज—जिसमें शिक्षित अशिक्षित सभी सम्मिलित थे—बालविवाह, वृद्ध-विवाह, मत मतान्तरों की विभिन्नता, अन्ध-श्रद्धा और सबसे बढ़कर विदेशी शासन से जर्जरित हो चला था। वर्ण-व्यवस्था ने हिन्दू-समाज की मरण की व्यवस्था करदी थी, बाह्याडम्बर ने सर्वत्र अपना डेरा जमा रखा था, और सम्प्रदायों की वृद्धि ने आचार-भ्रष्टता में ही एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने के लिए होड़-सी लगा रखी थी, दान के द्रव्य का घोर दुरुपयोग हो रहा था और पाश्चात्य शिक्षा-सम्पन्न लोग या तो ईसाइयत की ओर झुकने लगे थे या नास्तिकता की, ऐसे समय में इस देश में दयानन्द के नाम से एक ऐसी मानवीय शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ जिसने इन सारी कुरीतियों के समूलोच्छेद का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

ब्रह्मचारी दयानन्द वेद-वेदांगों के ज्ञान से सम्पन्न होकर जिन दिनों सारे देश में घूम-घूम कर सत्य आर्य-धर्म का परिचय अपने शिक्षित देश-वासियों को देने लगे उस समय सच्चे ज्ञान की प्यासी जनता ने उनका अद्भुत सत्कार किया और उनके द्वारा स्थापित आर्य-समाज का प्रचार सारे देश में बिजली की गति से हो चला। इसमें संदेह नहीं कि बहुत-से रूढ़िवादी संकीर्ण विचार के लोगों ने स्वामी जी और उनके आर्यमत-प्रचार का विरोध भी किया, किंतु उस विरोध से इस मत का प्रचार और भी तीव्रगति से हो चला और धीरे-धीरे सारे देश में आर्यसमाजों का जाल बिछ गया। फिर वेद-मंत्रों के उच्चारण से रवि-मण्डल गूंज उठा, हवन की सुगन्धि से वायु-मण्डल महक उठा और सत्कर्म के सन्देश से आर्य जाति को पुन: विचार करने, अपनी अवस्था समझने और उसमें सुधार करने का मार्ग दिखायी दिय

भारत विदेशी शासन के अधीन हो चुका था—उसकी धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियां बिखर चुकी थीं और ऐसा प्रतीत होता था कि विदेशी राजसत्ता से सुविधाएं प्राप्त कर विदेशी धर्म-प्रचारक इस देश को निगल ही जायंगे। ऐसे अवसर पर स्वामीजी-जैसी शक्ति का आविर्भाव होते ही पहली दो शक्तियों—धार्मिक और सामाजिक का संगठन आरम्भ हो गया और उसका प्रभाव शेष दो—राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों पर भी कुछ-न-कुछ पड़ा। इस प्रकार उन कार्यों का श्रीगणेश हो गया जो आगे चलकर सामाजिक और राष्ट्रीय सुधारों और विचारों के लिए आवश्यक थे।

स्वामी जी ने मानो समाज की गति और प्रवृत्ति पहले ही से समझ ली थी और उसके अनुसार रोगग्रस्त समाज के लिए सुधार की वह औषधि तैयार कर दी जिसके सेवन से समाज निर्मल बन सकता था।

स्वामीजी के जीवन-कार्यों पर मुग्ध होकर ही स्व० महात्मा गांधीने

कहा था— 'महर्षि दयानन्द के लिए मेरा मन्तव्य यह है कि वे हिन्द के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में—श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, उनकी विचार-स्वतंत्रता, उनका सबके प्रति प्रेम, उनकी कार्य-कुशलता इत्यादि गुणों लोगोंको मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत पड़ा है।''

स्वामीजी ने बहुत सोच-विचार कर हिन्दू-समाज की तत्कालीन दशा का निरूपण करते हुए आर्य-समाज के द्वारा जिन सिद्धान्तों के प्रचार का संकलन किया वे इस प्रकार थे :—

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है। (२) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसीकी उपासना करनी योग्य है। (३) वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। (४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। (५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिए। (६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। (७) सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए। (८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए। (९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। (१०) सब मनुष्योंको सामाजिक सर्वहितकारी नियम-पालन में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

इस प्रकार स्वामी जी ने जिस आर्य समाज की स्थापना की उसके नियमों में ही इस प्रकार के बीज बो दिये जो आगे चल कर अंकुरित,

वर्द्धित और पुष्पित हो कर ऐसे मधुर फल लाये जिसके कारण पतन की ओर लुढ़कती हुई आर्य जाति सँभल गयी और उसने एक बार फिर इस देश के प्राचीन गौरव की ओर ले जाने के प्रयत्नों का श्रीगणेश किया। स्वामी जी ने पहले और दूसरे नियमों द्वारा आस्तिकता और ईश्वर भक्ति की, तीसरे नियम द्वारा वेदों का अध्ययन अध्यापन करने की, चौथे नियम द्वारा सदा सचाई को ग्रहण करने के लिये प्रस्तुत रहने की, पाँचवें नियम द्वारा विवेक और धर्माचरण की, छठे नियम द्वारा सार्वजनिक सर्वांगीण उन्नति करने की, सातवें नियम द्वारा सबके साथ प्रेमपूर्वक और समुचित व्यवहार की, आठवें के द्वारा विद्या-प्रचार की, नवें द्वारा विद्या-प्रचार और सार्वजनिक उन्नति के लिये चेष्टा की और दसवें नियम द्वारा समाज में किन कामों के लिए परतंत्र और किन कामों के लिये स्वतन्त्र रहा जाय, इसका दिग्दर्शन कराया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन नियमों ने देश में अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न करदी और उनसे आज भी समाज को लाभ पहुँच रहा है।

इन नियमों के आधार पर ही स्वामी जी उपदेश किया करते थे। उनके उपदेशों का सारांश निम्न लिखित है:—

(१) ईश्वर एक है, लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। उसी उसी की उपासना करनी योग्य है।

(२) ईश्वर सर्वव्यापक है; उसकी मूर्ति नहीं हो सकती उसे भौतिक आंखों से देखा नहीं जा सकता। उसको ज्ञान और अनुभव के द्वारा जान सकते हैं।

(३) हमारे हित-साधन के लिए ईश्वर ने जो ज्ञान प्रदान किये हैं उसको वेद कहते हैं—अर्थात् ज्ञान का ही नाम वेद है। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(४) हम आर्य हैं—हमें सदा आर्यों (श्रेष्ठों) का-सा व्यवहार करना चाहिए। हमारे देश का आदि नाम आर्यावर्त है, हमें सभ्यता,

संस्कृति और मान-मर्यादा का सदा गौरव मानना चाहिए।

(५) धर्म को कभी न छोड़ना चाहिए—कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए—सदा आयुवर्द्धक काम करने चाहिएं और यश बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(६) जन्म से कोई ऊंचा नीचा नहीं होता—मनुष्य में सभी भेद उसके कर्मों से उत्पन्न होते हैं। जो जैसा करेगा वैसा भोगेगा।

(७) सौ वर्ष तक जीवित रहना हमारा धर्म है। आयु की इस अवधि में चार आश्रम माने गये हैं। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, सन्यासाश्रम।

(८) गुण, कर्म स्वभाव से मनुष्य-समुदाय के चार भेद माने गये हैं। १. ब्राह्मण, २. क्षत्रिय ३. वैश्य, ४. शूद्र।

(९) प्रत्येक मनुष्य को अपने आश्रम और वर्ण के धर्मानुकूल चलना चाहिए।

(१०) हमें अपने धर्म और संस्कृति का प्रसार सारे संसार में करना चाहिए। मनुष्यमात्र को आर्य (श्रेष्ठ) बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(११) शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मनुष्यमात्र—स्त्री पुरुष सभी को है। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के सहायक और पूरक हैं, प्रतिद्वन्द्वी नहीं।

इस प्रकार हम देखेंगे कि स्वामीजी के उपदेश सार्वभौम हैं, और वे मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए दिये गये हैं।

जीवन-वृत

स्वामीजी का लड़कपन का नाम मूल जी था। और वे काठियावाड़ के मोरवी राज्य के टकारा कस्बे में पैदा हुए थे। उनके पिता का नाम करसनजी लालजी तिवाड़ी था। उन्होंने बच्चे का नाम मूलशंकर

रखा था।

करसनजी सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे; परन्तु वे शिवजी के बड़े भक्त थे इसलिए यजुर्वेद का अधिक अनुशीलन करते थे। बालक मूलशंकर को पिता ने पांच वर्ष की आयु में पढ़ने बिठा दिया। थोड़े ही दिनों में विद्यार्थी मूलजी ने बहुत से वेदमंत्र और संस्कृत श्लोक कण्ठस्थ कर लिए। पिता अपने पुत्र को शिव-भक्त बनाने का प्रयत्न करने लगे।

बालक मूलजी जब चौदह वर्ष का हुआ तो पिता ने उसे शिवरात्रि व्रत रखने को कहा। टंकारा में शिवजी का एक मन्दिर था। उस रात सब भक्त शिवपूजा के लिए उस मन्दिर में इकट्ठे हुए। करसनजी भी अपने पुत्र के साथ वहां गये। रात्रि-जागरण कर सब पूजा में लगे। परन्तु आधी रात के बाद सब सो गये—केवल बालक मूलशंकर जागता रहा। बालक ने आश्चर्यपूर्वक देखा कि जिस शिवलिंग की पूजा में वे अब तक लगे थे उसके ऊपर अब सुनसान रात में चूहे आकर चढावा चट कर रहे हैं। बालक मूलजी ने सन्देह किया कि क्या शिवजी इन चूहों को ऐसा करने से रोक नहीं सकते। क्या उनमें इतनी भी शक्ति नहीं है?

बालक मूलजी ने पिता को जगाकर उनसे यही प्रश्न किया; पर करसनजी इस प्रश्न का क्या उत्तर देते—वे अवाक् रह गये। मूलजी की जिज्ञासा और भी बढ़ी।

बालकमूल जी के देखते-देखते उसकी एक बहन और चाचा की मृत्यु हो गयी इसलिए उसके हृदय में यह प्रश्न उठा—क्या मृत्यु से बचने का कोई उपाय नहीं है।

चाचा की मृत्यु से मूलशंकर का मन संसार से उचट गया। वह अब घर से ऊबने लगा। मूलजी की अवस्था अब १६ वर्ष की हो चुकी थी इसलिए मां-बाप ने उसे विवाह के बन्धन में बांधकर घर-बार छोड़कर न भागने का उपाय सोच लिया; परन्तु जिसके द्वारा

संसार में महान् कार्य होते हैं वह सांसारिक बन्धनों से नहीं बंधता। बालक मूलजी ने मां-बाप से यह आज्ञा मांगी कि उन्हें पढ़ने के लिए काशी भेज दिया जाय। पर मां-बाप अपने लड़के की मनोभावना ता- गये और उसको परिवार के बन्धन में बांधने के लिए ब्याह की तैयारियां गुप्त रूप में करने लगे।

पर मूलजी ने मां-बाप की योजना सूंघ ली। उन्होंने एक दिन संध्या के झुटपुटे में मां-बाप, घर-बार और कुटुम्ब-परिवार का मोह छोड़ अज्ञात स्थान के लिए प्रस्थान कर दिया।

सत्य की खोज

घर से निकल कर मूलजी सायला ग्राम में एक ब्रह्मचारी से मिले जहां उन्होंने इस नवयुवक ब्रह्मचारी को दीक्षा देकर गेरुवा वस्त्र धारण करा दिया। वहां साधुओं के मण्डल में वह "शुद्धचैतन्य" नामधारी नव-दीक्षित तरुण ब्रह्मचारी रहने लगा, पर इन साधुओं के साधारण जीवन से इन्हें सन्तोष न हुआ इसलिए और आगे बढ़े। वे सत्य की खोज में सिद्धपुर गये क्योंकि उन्होंने सुना था कि वहां संन्यासियों का अच्छा जमघट है। रास्ते में एक परिचित ने उन्हें गेरुवा वस्त्र धारे देखा तो इनके पिता को पत्र लिख दिया। करसनजी सिपाही साथ ले सिद्धपुर पहुंचे और वहां मूलजी को गेरुवा वस्त्र पहने देख क्रुद्ध हुए। मूलजी ने पिताजी के चरण पकड़ लिये और उनके साथ घर लौटने को तैयार हो गये। पिता ने बेटे का गेरुवा वस्त्र उतरवा दिया और उसे सफेद वस्त्र पहना कर अब पहरे में रखने लगे। पर तीन ही दिन बाद जब रात को पहरी बेसुध सो रहे थे तो मूलजी नौ-दो ग्यारह हो गये।

इस बार भी करसनजी ने बेटे की बड़ी खोज की पर वह तो सत्य की खोज में निकल चुका था। अनेक ग्राम-नगरों में घूमते-घामते हुए

मूलजी बड़ौदे के मठ में पहुँचे। वहां कुछ दिन रहकर नर्मदा की ओर गये। सत्य की खोज में मार्ग का कष्ट उन्हें कुछ न हुआ और अनेक पण्डित, साधु-संन्यासियों से मिलने के बाद अन्त में उनकी भेंट स्वामी पूर्णानन्द से हुई। मूलजी ने उनसे दीक्षा ले संन्यास ग्रहण किया और अब 'दयानन्द सरस्वती हो' गये।

योगाभ्यास तथा विद्याध्ययन

इसके बाद स्वामीजी ने अपने मन में अनुभव किया कि मैं संन्यासी तो बन गया पर योगविद्या द्वारा मन को वश में करने की कला जाने बिना यह व्यर्थ है। अब आप सच्चे योगी की तलाश में अनेक स्थानों पर भटकते हुए अन्त में आबू पहुंचे। आबू से वे हरिद्वार गये और वहां कुछ दिन रहकर ऋषिकेश पहुंचे। इन स्थानों पर उन्होंने योगाभ्यास की शिक्षा अनेक साधु-महात्माओं और योगियों से प्राप्त की।

ऋषिकेश से स्वामीजी टेहरी (गढ़वाल) और वहाँ से हिमालय के दुर्गम्य वन्य स्थानों में गये। तपस्या और कठिनाई का जीवन व्यतीत करके भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। बहुधा पाखण्डी संन्यासियों से ही भेंट होती थी इसलिए उनका मनोरथ अभी तक सफल नहीं हुआ। इन्हीं दिनों स्वामीजी की भेंट एक महन्त से हुई। उन्होंने इस तरुण ब्रह्मचारी का तेज देखकर कहा—"व्यर्थ क्यों भटक रहे हो—मेरे प्रधान शिष्य बन जाओ—बड़ी सम्पत्ति के स्वामी बनकर सुख से जीवन बिताओगे।"

स्वामीजी यह बात सुनकर हँस पड़े और बोले—"सम्पत्ति का सुख भोगना होता तो मेरे बाप के पास ही कौन-सी कम सम्पत्ति थी—मुझे तो सच्ची सम्पत्ति की खोज है—जब तक वह न मिलेगी तब तक मैं कहीं न टिकूँगा।

बद्रीनारायण होकर वे अलकनन्दा भी पहुंचे—पर वहाँ भी कोई ऐसा गुरु न मिला जो इनके मनको शान्ति देता। अन्त में अनेक कष्ट भोगते, भूख-प्यास सहते वे वहाँ से लौटे और मुरादाबाद आये।

अन्त में जंगल और पहाड़ों में बहुत दिन तक भटकने के बाद स्वामीजी सम्वत् १९१७ विक्रमी में मथुरा पहुँचे। वहां उन दिनों प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द रहते थे जिनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी।

स्वामी विरजानन्द ने पहले दयानन्द की परीक्षा ली और उन्हें योग्य विद्यार्थी पाकर पढ़ाना आरम्भ किया। केवल ३॥ वर्ष में उन्होंने दण्डी स्वामी विरजानन्द से वेद व्याकरण, दर्शन और अन्य शास्त्रों का अध्ययन कर लिया और फिर गुरुजी से विदाई लेने गये और गुरुदक्षिणा में उन्हें उनकी प्रिय वस्तु लौंग भेंट कर दी।

स्वामी विरजानन्द ने कहा—"मुझे लौंग नहीं, एक ऐसी गुरुदक्षिणा चाहिए जिसे देने में तुम समर्थ हो। सारे भारत में नाना मत-मतान्तर फैलने के कारण कुरीतियां और अन्धकार छाया हुआ है। तुम चारों ओर घूम-घूम कर अपने ज्ञान प्रकाश द्वारा वह अन्धकार दूर करो। वेदों का पठन-पाठन लुप्त हो चुका है, तुम उनका पुन: प्रचार कर सोई हुई जाति को जगा दो और उसमें जीवन-संचार करदो। मेरे लिए यही सबसे बड़ी गुरु-दक्षिणा होगी।"

शिष्य ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करली और इस प्रकार मथुरा से आगरा और धौलपुर होते हुए स्वामीजी ग्वालियर पहुँचे। वहां से जयपुर, किशनगढ़ और पुष्कर होते हुए १९२० विक्रमी में अजमेर पहुंचे। अजमेर में आपने सर्वप्रथम ईसाइयों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया।

अजमेर से किशनगढ़ होते हुए स्वामीजी फिर मथुरा गये

और अपने गुरु स्वामी विरजानन्द को अपने प्रचार-कार्य का परिचय दिया। स्वामी विरजानन्द यह जान कर बहुत सन्तुष्ट हुए कि उनका शिष्य उनके आदेशानुसार प्रचार-कार्य में लग गया है।

मथुरा से स्वामीजी कुम्भ-मेले के अवसर पर प्रचार का अच्छा अवसर देख (१९२३ वि० में) हरिद्वार गये। वहाँ राजा, रईस, अमीर, सेठ-साहूकार और सन्त-महन्तों सबमें स्वामीजी ने अच्छा प्रचार किया। उन्होंने भीमगोड़े के ऊपर एक स्थान पर "पाखण्ड-खण्डिनी पताका" गाड़ दी और वहीं से प्रचार करना शुरू किया।

इस पताका को देखने के लिए ही सहस्रों नर-नारी वहाँ एकत्रित हो गये। विशेषकर 'पाखण्ड-खण्डिनी' शब्द ने लोगों को बहुत आकर्षित किया क्योंकि अन्ध-विश्वास के गढ़ और प्रसिद्धतम तीर्थ में यह कौन महातार्किक पाखण्ड खण्डन करनेवाला आ पहुँचा है, यह जानने की अभिलाषा सभी को हुई।

इसके बाद कन्नौज, फर्रुखाबाद, कानपुर आदि स्थानों में घूमते और प्रचार-कार्य करते स्वामीजी सनातन-धर्म के गढ़ काशी जी जाने की तैयारी करने लगे। सभी जगहों में आपने शुद्ध वैदिक-धर्म का प्रचार किया और सभी प्रचलित कुरीतियों का खण्डन उग्र शब्दों में किया।

१९२६ वि० का कार्तिक वदी २ को स्वामीजी भारतीय विद्या की राजधानी—काशी पहुँचे और वहाँ आनन्दोद्यान में डेरा जमाया। काशी के पौराणिक पण्डितों में उनके आगमन का समाचार फैल गया। वहाँ काशी-नरेश से मिलकर स्वामीजी ने काशी के पण्डितों से शास्त्रार्थ का निश्चय किया। शास्त्रार्थ हुआ और प्रचार भी।

काशी के बाद स्वामीजी ने फर्रुखाबाद, मिर्जापुर, प्रयाग और कलकत्ते की यात्रा की और १९३१ विक्रमी में बम्बई पहुँच गये। वहाँ १९३२ वि० के चैत सुदी ५ को आर्य-समाज की स्थापना की।

तत्कालीन प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् महादेव गोविन्द रानाडे ने उन्हें पूना आमंत्रित किया और वहाँ उनके पन्द्रह प्रभावशाली व्याख्यान हुए ।

१९२६ वि० में दिल्ली में जो बड़ा राज-दरबार हुआ था उसके अवसर पर वैदिक-धर्म का प्रचार करने के लिए स्वामीजी वहाँ पहुंच गये । वहाँ वे भारत के तत्कालीन महान् पुरुषों—श्री केशवचन्द्र सेन, नवीनचन्द्र राय, मुंशी कन्हैयालाल, सर सय्यद अहमद खाँ आदि से मिले। इन सब को एक स्थान पर एकत्रित कर स्वामीजी ने सर्वतन्त्र सिद्धान्तों के प्रचार की बात-चीत भी पहले-पहल ही चलायी थी।

दिल्ली के बाद स्वामीजी ने पंजाब में प्रवेश किया । वहाँ सामाजिक रूढ़ियाँ पहले ही ढीली पड़ चुकी थीं इसलिए स्वामी-जी के उपदेशों ने जादू का काम किया । लाहौर में स्वामीजी के व्याख्यानों की धूम मच गयी। लाहौर में आर्य-समाज की स्थापना भी उसी समय हुई । स्वामीजी मुलतान, गुरदासपुर, रावलपिण्डी, जेहलम, वज़ीराबाद और गुजरात आदि ज़िलों में भी गये। वहाँ प्रायः अपने उपदेशों द्वारा आर्य-समाजों की स्थापना करते गये ।

पंजाब से लौट कर स्वामी जी फिर संयुक्त-प्रांत आये। बरेली में ईसाइयों से शास्त्रार्थ हुआ और मेरठ में पण्डित स्वामीजी से भेंट हुई। थियोसोफिकल सोसायटी की मैडम ब्लावट्स्की और अपने अमेरिकन भक्त कर्नल ऑल्काट से स्वामीजी मेरठ में ही मिले । थियोसोफिकल सोसायटी और आर्य-समाज के एकीकरण की चर्चा भी उन्हीं दिनों हुई किन्तु सैद्धांतिक मतभेद के कारण यह प्रस्ताव कार्य रूप में परिणत न हो सका।

१९३८ वि० में स्वामीजी भरतपुर गये और वहाँ से जयपुर होते हुए अजमेर गये । १९३८ वि० के कार्तिक मास में स्वामीजी

चित्तौड़ पहुंचे और वहाँ से उदयपुर भी गये। इन्दौर होकर आप जोधपुर पहुंचे। जोधपुर में स्वामीजी के व्याख्यानों का अच्छा असर पड़ा और स्वयं जोधपुर-नरेश महाराज यशवन्त-सिंह उनके व्याख्यानों में आते थे। पर एक दिन जब स्वामी जी राजमहल में गये तो उन्होंने देखा कि महाराज के पास नन्हीं-जान वेश्या आयी हुई है। महाराज ने उसे छिपाने की कोशिश की तो स्वामीजी ने फटकार कर कहा—"राजन्, आप लोग 'सिंह' कहलाते हैं—सिंह कभी कुरीतियों के पीछे नहीं फिरा करते। इससे उनकी मर्यादा में बट्टा लगता है। ऐसे कर्म छोड़ देने चाहिए।"

महाराज उस पर बहुत झेंपे। वेश्या चली गयी। १६४० वि० की आश्विन वदी १४ को स्वामीजी को रसोइये ने जो दूध पिलाया उससे उनकी दशा बिगड़ने लगी। पेट में भयंकर दर्द और कै तथा दस्त हुए। स्वामीजी की बीमारी का समाचार महाराज तक पहुंचा। डा० अली-मर्दान खां बुलाये गये; पर उनके उपचार से भी कुछ लाभ नहीं हुआ।

अन्त में स्वामीजी ने रसोइये—जगन्नाथ को बुलाया तो उसने दूध में ज़हर देने का अपराध स्वीकार कर लिया। फिर भी स्वामीजी ने केवल इतना कहा—"जगन्नाथ! मेरे इस प्रकार मरने से मेरा काम अधूरा रह गया, तुम नहीं जानते इससे लोकहित की कितनी हानि हुई है।"

इसके बाद स्वामीजी ने जगन्नाथ को स्वयं कुछ रुपये देकर उसे वहां से भाग जाने का आदेश दिया, क्योंकि वे वैसा न करते तो उस अपराध में जगन्नाथ पकड़ा जाता और फिर उसका न जाने क्या हाल होता।

डाक्टरों की राय से दूसरे दिन स्वामीजी आबू पहुँचाये गये; पर वहाँ भी उनकी दशा न सुधरी। पांच दिन बाद स्वामीजी भक्तों द्वारा

अजमेर लाये गये; पर कार्तिक कृष्णा पूर्णिमा [दीवाली] के दिन वे अपने शिष्यों—गुरुदत्त आदि को बुलाकर वेद-मन्त्रों का पाठ करते हुए अन्त में बोले —"ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की।"

इस प्रकार दीपावली के प्रकाश में भारत के उस महान योगी, सुधारक, हितैषी और राजनीतिज्ञ की मृत्यु हुई जिस ने कहा था—"विदेशी सरकार अपनी सरकार से अच्छी होने की अवस्था में भी अच्छी नहीं कही जा सकती।" और इस प्रकार भारत में सर्वप्रथम सामाजिक और राजनीतिक जागरण का बीजारोपण किया था।

— —

तीन :

राजा राममोहन राय

जिन दिनों भारत का शिक्षितवर्ग पाश्चात्य विचार-धारा में बहने और अन्धानुकरण करने के कारण अपने पूर्वजों के सद्गुणों का भी परित्याग करने लगा था, सब कुछ छोड़ केवल अंग्रेज सरकार की नौकरी करने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझने लगा था, समाज में जीर्णता की सड़ाँद आने लगी थी और धर्म में नव-शिक्षित वर्ग की आस्था लुप्त होने लगी थी, ऐसे ही समय बंगाल में एक ऐसी विमल विभूति का आविर्भाव हुआ जिसे आधुनिक भारत के सामाजिक एवं राष्ट्रीय निर्माण तथा जागृति का अग्रदूत माना जाता है।

युग-युगान्तर के परिवर्तनों और विदेशी शासन एवं शिक्षा के प्रभाव से हिन्दू-धर्म और संस्कृति कुछ ऐसी विकृत हो चली थी कि बिना नव-निर्माण किये उसकी उपयोगिता समाप्त होती जा रही थी। ऐसे समय पर राजा राममोहन राय ने हिन्दू-धर्म को नया रूप देने, उसके प्राचीन ग्रन्थों को नवयुग के प्रकाश में देखने के लिए जो अभिनव प्रयत्न किये उसका यह देश चिर ऋणी रहेगा।

हिन्दू-जाति अपने वास्तविक स्वरूप को भूल चली थी—उसे पाश्चात्य जीवन-पद्धति इतना आकर्षित कर रही थी कि वह अपने जीर्ण कलेवर को विनष्ट करने पर तुल गयी थी। ऐसे समय पर अपनी व्याख्या द्वारा प्राचीन हिन्दू-धर्म को उन्होंने वह नया रूप प्रदान किया जिसके कारण हमारे लाखों अंग्रेजी शिक्षित नवयुवक ईसाई बनने से बच गये।



राजा राममोहन राय

राजा राममोहन राय ने मूर्तिपूजा की उपासना-पद्धति का खण्डन कर निराकार ब्रह्मोपासना प्रचलित की। उन्होंने वेदान्त सूत्र का बँगला में सुन्दर भाष्य प्रकाशित कराया और ब्रह्मसमाज की स्थापना की। आधुनिक शिक्षा के प्रकाश से चौंधियाये हुए स्वधर्म से स्खलित होने को तैयार बंगाली युवक समुदाय ने इस समाज को बड़ी तेजी से अपनाया। वेदान्त जैसे गूढ़ विषय को समझाने के लिए राममोहन राय ने ग्रन्थ के तीन भाग कर दिये (१) भूमिका (२) अनुष्ठान, और (३) ग्रंथ। भूमिका भाग में निराकार ईश्वरोपासना, अनुष्ठान भाग में ब्रह्मोपासना की सर्वव्यापकता का निरूपण करते हुए ग्रन्थ को भली-भाँति समझाने का प्रयत्न किया है जिससे पाठक ग्रन्थ-प्रवेश के पहले ही अपने को उसके लिए पूर्णत प्रस्तुत कर लेता है। मूल ग्रन्थ को खोलकर समझाने का उन्होंने पूर्ण प्रयत्न किया और ग्रन्थ को सारे देश में प्रसारित करने के विचार से उन्होंने उसका हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित कराया। एक इसी बात से पता चल जाता है कि राममोहन राय कितने दूरदर्शी थे और उन्होंने सारे भारत मे प्रचारित करने के लिए इन दोनों भाषाओं को किस प्रकार वाहन बनाया था। इस बड़े ग्रन्थ का सारांश सरल और संक्षिप्त रूप में उन्होंने प्रकाशित कराया और उसका नाम 'वेदान्तसार' रखा।

केवल वेदान्त सूत्र की ही नहीं उपनिषदों की भी टीका उन्होंने अपने पूरे अनुवाद-सहित प्रकाशित करायी। इस प्रकाशन का ध्येय निराकार ब्रह्मोपासना का प्रचार था, इसलिए इनकी भूमिकाओं में प्रबल युक्तियों द्वारा उन्होंने एकेश्वरवाद का समर्थन किया। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि केवल अज्ञानियों के लिए पुराणादि ग्रन्थों में ऋषि-मुनियों ने देवी-देवताओं के पूजने की प्रणाली प्रचलित की थी और उन्हीं के लिए मूर्ति-पूजा का विधान

रखा है—वास्तव में तो निराकार ब्रह्म की उपासना ही शास्त्र-सम्मत है, वेदों का भी यही तत्व-सार है।

राममोहन राय ने वेदान्त के विषय में जहाँ शांकर-भाष्य की ही व्याख्या को अपनाया वहाँ उपासना के बारे में शंकराचार्य से भी आगे बढ गये क्योकि शंकर स्वामी ने तो केवल संन्यासियों के लिए ही निराकारोपासना की आज्ञा दी है जब कि राममोहन राय ने मनुष्य-मात्र को ब्रह्मोपासना का अधिकारी बताया है।

राममोहन पाश्चात्य शिक्षा के पूर्ण अनुरागी थे और उसके द्वारा प्रसारित नव-विज्ञान के प्रसार को बहुत पसन्द करते थे, पर साथ ही अपनी आर्य संस्कृति के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा थी। वेदान्त के ज्ञान-प्रसार के लिए ही उन्होंने १८२६ ई० में एक वेदान्त कालेज की स्थापना की। १८२७ ई० में आपने "गायत्र्या परमोपासना विधानम्" नामक पुस्तक प्रकाशित करायी जिसमें गायत्री मंत्र की विशद व्याख्या की गयी थी। इस वर्ष उन्होंने इसका अंग्रेजी अनुवाद भी छपवा दिया जिससे यूरोपियन और केवल अंग्रेजी जाननेवाले भारतीय विद्वान् भी गायत्री के महत्व को समझने लगे।

इस प्रकार धार्मिक भावना से शून्य पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रति अतिशय आकर्षित हो उसका अन्धाअनुकरण करनेवाले समाज को उन्होंने अपने धर्म के वास्तविक रूप को पहचानने के लिए एक नयी, दिव्य और अनूठी दृष्टि प्रदान की। चिरकाल से मुसलमानी राज्य का प्रभाव और अब नये अंग्रेजी राज्य की चकाचौंध से क्षुब्ध समाज अपना स्वरूप, धर्म और कर्त्तव्य बिल्कुल भूल गया था। राममोहन ने उसकी आंखमें उंगली डालकर उसे उस प्राचीन धर्म को नयी दृष्टि से देखने के लिए बाध्य कर दिया और इस प्रकार जाति को उन्हें संजीवनी देने का श्रेय प्राप्त हुआ।

उन दिनों हिन्दू धर्माचार्य केवल ब्राह्मणों को ही वेद पढ़ने

पढ़ाने का अधिकारी मानते थे। गायत्री मन्त्र यदि किसी को कण्ठ भी करा दिया जाय तो जन-साधारण से उसका अर्थ न बताये जाने अथवा व्याख्या से वंचित रखने की प्रथा के कारण वह उसके महत्व को न समझ पाता था। इस प्रथा के उन्मूलन के लिए ही राममोहन ने "गायत्र्या परमोपासना विधानम्" नामक पुस्तक प्रकाशित करायी। उसके अतिरिक्त १८२८ ई० में उन्होंने जनसाधारण को गायत्री का अर्थ समझाने के लिए एक दूसरी पुस्तक—"गायत्री अर्थ" बंगला में प्रकाशित करायी। इसी वर्ष 'ब्रह्मोपासना' नामक पुस्तक की रचना हुई जिसमें ब्रह्म की उपासना का ढंग बताया गया। १८२९ ई० में 'अनुष्ठान' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसकी अवतरणिका में ब्रह्मोपासना आदि बारह महत्वपूर्ण प्रश्नों का सुन्दर, सरल और विशद विवेचन किया गया है।

इस प्रकार ब्रह्मसमाज की स्थापना कर उसे व्यापक बनाने के लिए उन्होंने पथ्य-प्रदान, आत्मानात्म-विवेक, क्षुद्रपत्री, ब्रह्म संगीत और पादरी और शिष्य सम्वाद आदि कितनी ही छोटी पुस्तकें भी प्रकाशित करायीं।

उन दिनों तक समाज में फारसी का काफी प्रचार था इसलिए उन्होंने उसमें भी ब्रह्म-समाज का कुछ साहित्य प्रकाशित कराया और पत्र-पत्रिकाओं में भी उसकी पर्याप्त चर्चा चलायी। उनके अतिरिक्त भूगोल, खगोल, इतिहास, विज्ञान और भूमिति के बारे में भी काफी साहित्य प्रकाशित कराया जिसने बंगला-भाषा का भण्डार बहुत बढ़ा।

राममोहन ने अपने समय की परिस्थिति को देखते हुए देशहित के लिए पाश्चात्य शिक्षा और विदेशी भाषा का अध्ययन करना आवश्यक समझा। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी-शिक्षा

को प्रोत्साहन देने के लिए तत्कालीन गर्वनर-जनरल लार्ड एम-हर्स्ट को प्रेरित किया। कलकत्ते का हिन्दू-कालेज आप ही की प्रेरणा से स्थापित हुआ। शिक्षा के लिए उन्होंने पादरियों तक को प्रोत्साहन दिया। 'एङ्गलो हिन्दू स्कूल' नामक एक निजी स्कूल भी उन्होंने खुलवाया। यहां हिन्दू विद्यार्थियों को निश्शुल्क शिक्षा दी जाती थी।

पुराने ढंग के पण्डितों और ईसाई पादरियों के द्वारा नवोदित पाश्चात्य शिक्षा-समन्वित हिन्दू-समाज को क्रमशः घृणा और अनुराग का पात्र बनना पड रहा था। राममोहन ने इन दोनों ही वर्गों को उनके प्रयत्नों में विफल करके एक ऐसे नये और सुसंस्कृत समाज की सृष्टि कर दी जिससे हिन्दू नवयुवकों को न तो पुरातन-पन्थी पण्डितों का डर रहा, न पादरियों के जाल में फंसने की आशंका। इस प्रकार तत्कालीन पीढी के युवक समुदाय का सम्यक् पथ-प्रदर्शन राममोहन के हाथों में आगया और उन्होंने अपने प्रति किये गये विश्वास का निर्वाह समुचित रूप में किया। राममोहन ने एक ओर जहां पुरातन-पन्थी मूर्त्तिपूजकों की आलोचना की वहां दूसरी ओर ईसाई पादरियों को भी नहीं छोड़ा और उनके धर्मग्रन्थ का पूर्ण अध्ययन करने के बाद राममोहन ने उनसे जो-जो प्रश्न किये उनका उत्तर देने में वह बिल्कुल असमर्थ रहे।

राममोहन ने 'आत्मीय सभा' की स्थापना अपने घर पर कर ली और अब तक जो काम वे पुस्तकों और अखबारों से किया करते थे उसे अब मौखिक उपदेश-द्वारा भी करने लगे। शास्त्रार्थ द्वारा बड़े-बड़े ईसाई और मुसलमान विद्वानों को चकित और निरुत्तर करना आरम्भ कर दिया और उनकी वाग्वीरता तथा प्रतिभा की छाप सारे देश पर पड़ गई।

१८२८ ई० में राममोहन ने 'ब्रह्मसमाज' की विधिवत् स्थापना कर ली और एक निश्चित स्थान पर प्रति शनिवार को ब्रह्म-उपासना होने लगी। इस सभा में मूर्तिपूजा, नैवेद्य और बलिदान आदि के अनुष्ठान वर्जित थे। इस सभा मे सम्मिलित होने के लिए जाति या वर्ण का कोई और भाव नहीं रखा गया था— किन्तु यह बाते आवश्यक थीं कि वह व्यक्ति सच्चरित्र, गम्भीर, पवित्र और धर्माचारी हो।

इस प्रकार हम देखेंगे कि आधुनिक युग में धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का सूत्रपात अब से सवा सौ वर्ष पूर्व राममोहन राय ने किया था। जिस समय सारा संसार धार्मिक संकीर्णताओ से अभिभूत था— प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने ही धर्म को ऊंचा समझता था और उसके नाम पर रक्त बहाने को तैयार था, जब पाश्चात्य धर्मनीतिज्ञ भी धर्म के विश्वव्यापी सिद्धान्तो को समझने में असमर्थ थे ऐसे समय राममोहन ने किसी की सहायता लिए बिना जाति, वर्ण और देशाचार के बन्धनों से मुक्त एक ऐसे सार्वभौम धर्म की नींव डाली जिसने हिन्दू-धर्म को अभिनव स्वरूप प्रदान कर उसकी रक्षा की। जब हिन्दू-धर्म अनेकानेक देवी-देवताओ के पूजन मे लिप्त होने के कारण अपने उच्च आध्यात्मिक सिद्धान्तो को भूल चला था और अमेरिका तथा यूरोप के धर्मज्ञ केवल बाइबिल की शिक्षा से सीमित थे और मुसलमान कुरान की चारदीवारी के बाहर न जा सकते थे, ऐसे समय पर राममोहन ने संसार को निराकार ब्रह्मोपासना का वह मार्ग दिखाया जो आर्य-सभ्यता और संस्कृति का प्राचीनतम उत्कृष्ट स्वरूप था। यह सब होते हुए भी उनकी निष्ठा में ऐसे गुणों का सामंजस्य था कि हिन्दू उन्हें हिन्दू मानते थे, ईसाई ईसाई कहते और मुसलमान उन्हे इस्लाम का अनुयायी कहने में नहीं हिचकते थे। पहले 'सम्वाद-कौमुदी' और बाद में 'चन्द्रिका' नामक उनकी प्रकाशित पत्रिकाओ द्वारा उनकी गति-विधि का अच्छा परिचय मिलता है।

सुधार-कार्य

यद्यपि हिन्दू-समाज में सती-प्रथा अत्यन्त उच्च आदर्श को सम्मुख रखकर आरम्भ किया गया था, पर बाद में जब पुरुष के मर जाने पर स्त्रियों को जबरदस्ती उसके शव के साथ जीवित बांधकर जलाने की प्रथा प्रचलित हो गयी तो उसका स्वरूप ऐसा कठोर, नृशंसतापूर्ण और घृणा-व्यंजक हो उठा कि उससे छुटकारा पाने में ही समाज का कल्याण प्रतीत होता था। राममोहन ने समाज की इस दुरवस्था को देखा। स्वयं उनके बड़े भाई की पत्नी को पति के शव के साथ बांधकर जलाया गया तो यह हृदय-विदारक दृश्य उनसे न देखा गया। उन्होंने यह प्रथा दूर करने का दृढ संकल्प कर लिया। उन्होंने लोकमत परिवर्तित करने का काम भी हाथ में लिया और सरकारी सहायता से सती-प्रथा बन्द करने का कानून भी पास कराने का प्रयत्न किया। उन्होंने शास्त्रार्थ द्वारा पण्डितों और तार्किकों को समझाया कि बलात्कारपूर्ण सती-प्रथा शास्त्रोक्त नहीं, पैचाशिक है। अन्त में लार्ड विलियम बेण्टिङ्क को प्रेरित कर राममोहन ने सती-प्रथा रोकने का कानून बनवा कर ही छोड़ा।

वे केवल सती-प्रथा बन्द करके ही चुप नहीं हुए; स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार के लिए उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। बहु-विवाह की प्रथा दूर करने के लिए भी उन्होंने घोर आन्दोलन किया। कन्या विक्रय और बाल-विवाह की प्रचलित कुप्रथाओं को दूर करने के लिए भी उन्होंने ही सर्वप्रथम आवाज उठाई।

उन दिनों हिन्दू-समाज में विलायत-यात्रा का निषेध था। इस लिए पाश्चात्य शिक्षा-सम्पन्न लोग भी प्रायश्चित् आदि के डर से विलायत नहीं जाते थे। राममोहन ने सबसे पहले समुद्र-यात्रा करके इस निषेधको तोड़ कर औरों के लिये रास्ता खोल दिया।

हिन्दुओं के जाति-भेद या वर्ण-व्यवस्था का नाशकारी परिणामों

के विरुद्ध लक्ष्य करते हुए उन्होंने १८२८ में ही लिखा था :—"अनिष्ट जाति-भेद ने उन (हिन्दुओं) को असंख्य जाति-उपजातियों में विभक्त कर दिया और उन्हें देश-भक्ति के विचारों से सर्वथा वंचित कर दिया तथा अनेक नियमों व कठिनाइयों ने जकड़ कर साहसिक कार्य करने योग्य नहीं रखा, उन्हें दूर करने में ही उनका कल्याण है।"

राजन तक-प्रवेश

राममोहन ने धर्म-प्रचार और समाज-सुधार के काम तो किये ही; पर राजनीति में भी इन्होंने महत्वपूर्ण आन्दोलन किये थे। वास्तव में उन्हें आधुनिक भारत की राजनीति का जनक कहा जाना चाहिए और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में तो वे "न केवल ब्रह्म-समाज के संस्थापक और समाज-सुधार के अग्रगामी थे, प्रत्युत भारत के वैधानिक आन्दोलन के पिता थे।

समाचारपत्रों की स्वाधीनता के लिए राममोहन ने प्रिवी कौंसिल तक प्रयत्न किये। जूरी बिल के अनुसार किसी भी देशी आदमी—हिन्दू या मुसलमान के अभियोग का निर्णय यूरोपियन या देशी ईसाई का न्यायालय दे सकता था, पर किसी ईसाई का चाहे वह विदेशी हो या देशी मामला हिन्दू या मुसलमान न्यायाधीश की अदालत में नहीं आ सकता था। इसके विरुद्ध राजा राममोहनराय ने ब्रिटिश पार्लियामेंट के दोनों कक्षों—कामन्स-सभा और लार्ड-सभा में प्रार्थनापत्र भेजा। इसके अतिरिक्त भारत वासियों के लिए तथा हिन्दुस्तान के लिए 'होमरूल' आंदोलन का श्रीगणेश राममोहन ने किया था। इसके अतिरिक्त उत्तराधिकार बिल के मामले को भी प्रिवी कौंसिल तक पहुँचा कर आपने उसमें विजय प्राप्त की थी।

दीवानी अदालतों के अधिकार छीन कर जब कलक्टरों को दे दिये गये तो इस अनौचित्य के विरुद्ध भी राममोहन ने [illegible]

बैंटिंग और प्रिवी कौंसिल को लिखा, पर उसका कोई परिणाम तब तक नहीं निकला।

जिन दिनों हिन्दुस्तानी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध मुंह खोलते डरते थे--उन दिनों राममोहन ने भारतवासियों की ओर से शासन-सम्बन्धी त्रुटियों की शिकायतें ऊपर ठेठ तक पहुंचा कर जिस साहस, दृढ़ता और कर्त्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया उसे देखते हुए तो उन्हें "राजनीतिक आन्दोलनों का पिता" कहा जाता है।

जन्म और शिक्षा

राममोहन का जन्म हुगली जिले के राधानगर ग्राम में १७७४ ई० में हुआ था। इनके माता-पिता सम्पन्न थे। उनके पूर्वज नवाब के यहाँ सम्मान और भूसम्पत्ति प्राप्त कर चुके थे। राममोहन के पितामह कृष्णचन्द्र बन्दोपाध्याय एक प्रतिष्ठित राजकर्मचारी थे। इसलिए उन्हें 'राजा' की उपाधि मिली थी। कृष्णचन्द्र के तीन पुत्र थे जिनमें तीसरे ब्रजविनोद राय के पुत्र राममोहन हुए।

ब्राह्मण परिवार में जन्म होने के कारण बचपन से ही राममोहन की प्रवृत्ति धर्म की ओर थी। उन दिनों उर्दू-फारसी का अधिक प्रचार था और राममोहन के पिता उन्हें राजकर्मचारी बनाना चाहते थे। इसलिए गुरुजी से मातृभाषा [बंगला] का कुछ अध्ययन कर वे नौ वर्ष की अवस्था में ही उर्दू-फारसी पढ़ने में लग गए। तीन वर्ष में इस होनहार बालक ने पटने में फारसी का पाण्डित्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसके बाद साहित्य, धर्म-ग्रन्थ—विशेषतः वेदान्त का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया। उनकी यह जिज्ञासा देख पिता ने उन्हें संस्कृत का उच्च अध्ययन करने के लिए काशी भेज दिया।

थोड़े दिनों के अध्ययन के बाद वे पौराणिक पण्डितों के बाह्याडम्बर

और पाखण्ड की बातों से ऊब उठे और वेद-विहित सद्धर्म की ओर आकर्षित हुए। विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने मूर्तिपूजा के [illegible] जो पुस्तक लिख डाली उससे सारा पण्डित समाज [illegible] बेचैन हो गए। उन्होंने बालक राममोहन के बातों से [illegible] घर से निकाल दिया। सोलह वर्ष के इस बालक ने [illegible] अध्ययन की लालसा से इसी अवस्था में निकलने के लिए प्रस्थान कर दिया। तिब्बतवालों की लामा के प्रति अन्ध-भक्ति [illegible] राममोहन से वहा भी न रहा गया और वे धर्मालोचना में पड़ गये। [illegible] वत. चीन जाते? पर उनके माता-पिता ने पुत्र-वियोग में [illegible] खोजने को आदमी भेजे। इनकी माँ पुत्रवियोग से [illegible] सन्देश-वाहकों द्वारा मा [illegible] सुन कर राममोहन [illegible] गया। वे चार वर्ष के पर्यटन के बाद घर लौट आये।

कुछ दिन घर रहने के बाद वे फिर [illegible] स्वयं इनके पिता उनसे शास्त्रार्थ में हार गये, पर [illegible] चार से फिर भी राममोहन डिग न सके। १८०६ [illegible] पिता का स्वर्गवास हो गया। किन्तु पिता ने [illegible] राममोहन का विवाह कर दिया था, और [illegible] पत्नियां जीवित थीं [illegible]।

किन्तु सब कुछ करते हुए भी राममोहन [illegible]। उनकी स्मरण-शक्ति बड़ी तेज थी। वे संस्कृत, बंगला, [illegible] और अंग्रेजी के पूर्ण पण्डित बन चुके थे।

सरकारी नौकरी

पिता का मन रखने के लिए राममोहन ने सरकारी [illegible] की थी। वे दीवानी के सरिश्तेदार बन गये [illegible] शानुसार उन्हें काफी सम्मान भी मिला [illegible]

आदमी भला सरकारी नौकरी में कैसे टिकता। देश-सेवा और जातीय सुधार की धुन में उन्होंने १८१२ ई० में अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

इसके बाद तो उन्होंने जिस योग्यता के साथ अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया वह एक सर्वविख्यात् बात है। कलकत्ते में ब्रह्म-समाज की स्थापना कर उसका प्रचार और साथ ही समाज-सुधार और राजनीतिक प्रगति-सम्बंधी आन्दोलन करके उन्होंने सारे देश— यहां तक कि विलायत तक में अपने नाम की धाक जमा दी।

× × ×

यूरोप भ्रमण के लिए राजा राममोहन राय १९ नवम्बर १८३० ई० को रवाना हुए थे। वे अपने साथ अपने पालित पुत्र राजाराम तथा दो नौकरों को भी ले गये थे। दूध पीने के लिए एक गाय भी जहाज़ पर लेते गये थे।

इंग्लैंड में राजा राममोहन राय का बड़ा स्वागत हुआ, ८ अप्रैल १८३१ ई० को वे लिवरपूल में जहाज़ से उतर कर एक होटल में ठहरे। वहाँ अनेक सम्भ्रांत पुरुष इनसे मिलने आये। मैन्चेस्टर का निरीक्षण करने के बाद आप लन्दन पहुँचे जहां प्रसिद्ध दार्शनिक जरमी बेन्थम आप से मिलने आये। भारत-सम्बन्धी रिफार्म बिल, बृटिश पार्लियामेण्ट द्वारा पास होने के समय आप वहीं थे। विलायत में उन्हें राजदूतों का-सा सम्मान मिला और सम्राट् चतुर्थ जार्ज ने उन्हें भोज दिया। युनिटेरियन सम्प्रदाय ने भी उनका बड़ा सम्मान किया। १८३३ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पार्लियामेण्ट की एक कमेटी के सम्मुख भारत के शासन-सम्बन्धी आज्ञा-पत्र तैयार करते समय साक्षी देने के लिए राजा राममोहन राय को आमन्त्रित किया तो उन्होंने कोई भी संकोच और लिहाज किए बिना अपनी सच्ची सम्मति दी। उनसे कर-प्रणाली तथा जन-सामान्य के बारे में भी प्रश्न किये गये थे जिनके

उन्होंने समुचित उत्तर दिये। इंग्लैण्ड और फ्रांस का इन्होंने भ्रमण किया और सितम्बर १८३३ ई० में ब्रिस्टल [इंग्लैण्ड] नगर में रहने लगे। वहाँ उन्हें देखने के लिए लोगों का तांता लगा रहता था। धार्मिक प्रचार-सम्बन्धी भाषण भी प्रायः दिया करते थे। पर वहाँ उनको ज्वर आगया और एक सप्ताह की अल्प बीमारी के बाद स्वर्गवासी हो गये।



: चार :

स्वामी रामतीर्थ

पाश्चात्य शिक्षा और विज्ञान के प्रसार से जब यह अध्यात्मिक देश एक बार चकाचौंध हो गया था और अपनी विद्या को भूल कर केवल बाहरी तड़क-भड़क और भोग-विलास को अपना ध्येय समझने लगा था उसी समय पंजाब में एक ऐसी विभूति पैदा हुई जिसने सिद्ध कर दिया कि इस लोक के परे और भी कुछ है और इन चर्म-चक्षुओं से दीखने वाली वस्तुओं के अतिरिक्त भी कोई ऐसी शक्ति है जिसका अनुभव किये बिना हम जगत् की वास्तविकता को नहीं समझ सकते।

पंजाब या हिंदुस्तान की ही नहीं सारे जगत् की इस अनोखी विभूति का नाम था स्वामी रामतीर्थ। बीसवीं सदी के आरम्भ [१९०२ ई०] में ही यह महान् परमहंस और संन्यासी नयी दुनिया को चमत्कृत करने अमेरिका पहुँच गया था। उन दिनों अमेरिका के ईसाई पादरी हिंदुस्तान आते थे और यहाँ से अपने देश में लौट कर वहां के निवासियों को बताते थे—"हिंदुस्तान तो सांपों का देश है—वहां जंगल, जोगी और अपार सम्पत्तिशाली देशी नरेशों का बाहुल्य है...आदि आदि।"

स्वामी रामतीर्थ ने अमेरिका पहुँचकर यह प्रमाणित कर दिया कि भारत सच्चे योगियों, परमहंसों और अध्यात्म विद्या-विशारदों का देश है और इस गये-गुजरे जमाने में भी इस में वह विभूतियां मौजूद हैं जो अपने आत्मबल से संसार को चमत्कृत कर सकती हैं।

स्वामीजी १९०२ ई० में अमेरिका पहुंचे तो वहां के एक समा-

चारपत्र ने आपके सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा था —

"पुरानी रीति बदलने वाली है। इधर भारत से [illegible] एक ऐसा व्यक्ति आया है जिसकी बुद्धि [illegible] । वह एक ईश्वरीय दूत, दार्शनिक, वैज्ञानिक [illegible] अमेरिका में धर्म-प्रचार करने का इरादा रखता है। वह [illegible] के पुजारियों के सामने निःस्वार्थ पूर्ण [illegible] विश्वास प्रस्तुत करता है। वह सबसे ऊँची जाति का [illegible] है और अपने मित्रों में 'स्वामी राम' के नाम से प्रसिद्ध है।

"हिमालय पर्वत का [illegible] मेधावी नवयुवक है। उसका [illegible] प्रकाशित है। उसकी नाक पतली और [illegible] सफेद, उसके चेहरे पर ऐसी मुस्कराहट [illegible] आसपास के लोगों पर पड़ता है और जो भी [illegible] अन्दर आता है लोहित हुए बिना नहीं [illegible] ।"

ये हैं स्वामीजी की प्रशंसा के [illegible] उक्तियाँ जो पत्र में लगभग [illegible] ।

स्वामीजी में सचमुच [illegible] — [illegible] नित्व जो निकट आने वाले को इस प्रकार [illegible] जैसे चुम्बक लोहे को खींच लेता है। वह [illegible] रहते थे कि उनका दर्शन करके [illegible] था, उनके दर्शन करके और उनकी [illegible] चिन्ताओं के बोझ से मुक्त [illegible] थे।

प्रसन्नता और [illegible] स्वामीजी के [illegible] । [illegible] में कुछ [illegible] और कुछ [illegible] रामतीर्थ के आदर [illegible] करते थे।

उनके इस [illegible]

आकर्षित हो जाते थे। एक बार जब आपका अमेरिकन सेक्रेटरी आपको न्यूयार्क जाने के लिए रियायती टिकट (धर्म-प्रचारकों को वहाँ की रेलवे कम्पनियाँ रियायती टिकट देती हैं)लेने अपने साथ रेल्वे कम्पनीके मैनेजर के पास ले गया तो स्वामीजी की मुग्ध-मुद्रा देखते ही मैनेजर ने कहा—इन्हें ? इन्हें तो मैं अपनी सबसे अच्छी मोटर में भेज सकता हूँ, क्योंकि इनकी मुस्कराहट में जादू है।

हिन्दुस्तानी सभ्यता का यह प्रतीक, अध्यात्मिकता का यह प्रतीक और मानवता की यह साक्षात् मूर्ति ऐसी थी जिसे एक बार देख लेने वाला जीवन भर नहीं भूल सकता।

स्वामीजी संन्यास ग्रहण करने के पहले लाहौर के मिशन कालेज और ओरियण्टल कालेज में अध्यापन-कार्य कर चुके थे। आपके मनमें पहले ही से अध्यात्मिकता के बीज थे और समय पाकर वे ऐसे प्रबल रूप में अंकुरित हुए कि उन्होंने अपने पिताजी को लिख दिया :—

"मैं अपना शरीर भगवान् के लिए जुए में हार चुका हूँ।"

और १८९९ ई० में वह संसार-गृहस्थ का बन्धन छोड़ने को तैयार हो गये।

लाहौर से वे हरिद्वार पहुँचे और वहां एक एकान्त स्थानमें रहने लगे। उनके साथ जो और लोग उनके शिष्य बन कर आये उनसे स्वामीजी ने कहा, "तुम्हारे पास जो कुछ रुपया-पैसा और आभूषण आदि हों सब गंगाजी में फेंक दो क्योंकि तुम जब तक केवल भगवान् पर पूरा भरोसा नहीं करते तब तक संन्यास धारण करना व्यर्थ है।"

जिन लोगों ने ऐसा किया वही स्वामीजी के साथी और संन्यासी बन सके। भगवान् पर पूर्ण विश्वास का यह परिणाम हुआ कि एक गृहस्थ ने इस सच्ची सन्त-मण्डली के खाने-पीने की व्यवस्था कर दी।

स्वामीजी ने प्रचार-कार्य आरम्भ करने के पहले दो-तीन वर्ष हिमालय पर्वत पर प्रकृति के सान्निध्य और गम्भीर चिन्तन में व्यतीत

किये। वहाँ आपने जमनोत्री और गंगोत्री की भी यात्रा की। स्वामी-जी अब नगरों के कोलाहल से दूर प्रकृति के गहरे [illegible] और पर्वत की गुफाओं में रहने लगे। प्रकृति का [illegible] की कलकल, वृक्षों की मर्मर ध्वनि और [illegible] वायु [illegible] का सन्देश और स्पर्श अनुभव करता था।

प्रचार

हिमालय में प्रकृति की ताज़गी और [illegible] स्वामीजी ने अपने अनुभूत ज्ञान—अद्वैतवाद के प्रचार का [illegible] और व्याख्यानों, लेखों तथा पद्यरचना-द्वारा [illegible] करने लगे। हरिद्वार में उन्होंने 'अद्वैतवादिनी सभा' [illegible] उनका कहना था कि यदि हृदय-रूपी [illegible] परमात्मा का प्रतिबिम्ब [illegible] करता है, पर [illegible] दर्शन कहां से होंगे। पीछे अमेरिका जाने पर स्वामीजी [illegible] पद्यरचना अंग्रेजी में भी लिखी।

स्वामीजी [illegible] प्रचार-कार्य [illegible] करने में लगे थे, क्योंकि उनका कहना था कि [illegible] तक भोजन नहीं करना चाहिए [illegible] बना हो। पहले मुझे [illegible] की पूरी [illegible] दर्शन का अध्ययन कर लेना है, [illegible] सकूंगा और देश की [illegible] और [illegible]।

इस प्रकार [illegible] बाद प्रचार-कार्य में [illegible] किया।

१८९३ ई० में शिकागो (अमेरिका) में सर्वधर्म [illegible] चुका था और १९०? ई० में टोकियो (जापान) में भी [illegible] महासम्मेलन होने की [illegible]

दिनों टेहरी (गढ़वाल) में थे। एक दिन टेहरी के महाराजा ने आपसे कहा कि आप इस सर्वधर्म महासम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए जापान क्यों न चले जायँ। समय था—कलकत्ते पहुंच कर जहाज पकड़ना था। स्वामीजी अपने विश्वस्त सेवक और शिष्य स्वामी नारायण को साथ ले जापान के लिए रवाना हो गये।

टोकियो (जापान) पहुंच कर स्वामीजी इण्डो-जापानी क्लब में गये जहाँ सरदार पूर्णसिंह मिले जो इन दिनों जापान में विद्याध्ययन करने गये थे। स्वामीजी के व्यक्तित्व पर सरदार पूर्णसिंह ऐसे मोहित हुए कि आप भी सर-दाढ़ी-मूँछ मुड़वा कर संन्यासी बन गये।

जापान पाश्चात्य देशों की भौतिक नकल करने में काफी सफल हो चुका था, पर अध्यात्मिकता लुप्त-सी थी। ऐसी दशा में स्वामीजी के उपदेशों को उसने दिलचस्पी के साथ सुना।

जापान से स्वामीजी ने नारायण स्वामी को तो और जगहों में प्रचार के लिए भेज दिया—पर स्वयं अमेरिका चले गये। जापानियों की सदा प्रसन्न रहने की आदत स्वामीजी को बहुत पसन्द आयी और उसकी कद्र करते हुए स्वामीजी ने कहा कि मैं उन्हें क्या शिक्षा दूँ—वे तो स्वयं वेदान्ती हैं—कैसे प्रसन्न, परिश्रमी और शान्त हैं।

अमेरिका में

जब स्वामी रामतीर्थ अमेरिका पहुंचे तो जहाज से उतरते ही एक अमेरिकन उनका प्रकाशवान मुखमण्डल देखकर दंग रह गया—उनका आनन्द-मग्न चेहरा देख उसने स्वामीजी से पूछा—"आप अमेरिका में किसी को जानते हैं?"

स्वामीजी—"हाँ, मैं आपको जानता हूं।"

अमेरिकन—"क्या आपके पास सामान नहीं है?"

स्वामीजी—"मेरे पास इतना ही सामान है जो मेरे शरीर पर है।"

यह सुन वह अमेरिकन (मि० हिलर) स्वामीजी का भक्त बन गया और उन्हें अपने घर ले गया। वहाँ उनके प्रेमवश स्वामीजी अर्से तक रहे। अमेरिका में लगभग दो वर्ष रहकर स्वामीजी ने [illegible]प्रिय अमेरिकनों को आध्यात्मिकता का सन्देश दिया। एक दिन एक अमेरिकन अभिनेत्री (गुर्ट्रूड) स्वामीजी से मिलने आयी। वह हीरे, जवाहरात और मोतियों से लदी थी और उग्रगन्ध (सेन्ट) लगाकर साक्षात् परी बनकर आयी थी। वह जब आयी तो उसके मुखमण्डल पर मुस्कराहट थी, पर जब बात करने लगी तो उसने बताया कि— "स्वामीजी, मैं दुःखी हूं। आप मेरी बाहरी टीम-टाम से न देखें — मैं हृदय से पीड़ित हूं। इन सभी बाहरी बनावों से मैं ऊब गयी हूं।"

स्वामीजी ने उसे आश्वासन और उपदेश देकर मानसिक शान्ति प्रदान की।

एक और अमेरिकन महिला आयी। वह भी बहुत दुःखी थी क्योंकि उसका बच्चा मर गया था। वह चाहती थी कि स्वामीजी उसका दुःख दूर कर उसे सुखी बना दें।

"राम प्रसन्नता और सुख-शान्ति बेचता है", स्वामीजी ने कहा — "पर तुम्हें उसका मूल्य चुकाना होगा।"

"आप जो कहेंगे मैं दूंगी, चाहे जो मूल्य मांगें [illegible]" महिला ने जवाब दिया।

"सुख के राज का सिक्का और है, और मुझे [illegible] सिक्का ही देना पड़ेगा।" स्वामीजी ने कहा।

"मुझे स्वीकार है— जो मांगें दूंगी, पर [illegible] चाहिए।"

"बहुत अच्छा, एक छोटे [illegible] के लड़के को लेकर [illegible]— बिल्कुल अपने बच्चे की तरह— सुखी होने का यही उपाय है" स्वामीजी ने प्रस्ताव दिया।

"ओह, यह तो बहुत कठिन है," महिला ने विवशता प्रकट की।

"तो सुखी और प्रसन्न होना भी कम कठिन नहीं है।" स्वामीजी ने जवाब दिया।

अन्त में वह महिला मान गयी और स्वामीजी के आदेशानुसार एक हब्शी के बच्चे को अपना पुत्र बनाकर पाला और प्यार करने लगी। ऐसा करने पर उसे प्रसन्नता और सुख-शान्ति मिल गयी।

व्याख्यान

अमेरिका के बड़े और छोटे सभी शहरों में स्वामीजी व्याख्यान देने लगे। भारत की प्राचीन अध्यात्मिकता और वेदान्त जैसे विषय को स्वामीजी अमेरिकनों को बड़े ही सरल ढंग से उदाहरणों के द्वारा समझाते थे। उनके श्रोता सब दुःख भूल जाते थे और कम-से-कम कुछ समय के लिए तो उन्हें स्वामीजी की मस्ती का एक अंश मिल जाता था। स्वामीजी ने जहां अमेरिकनों की स्फूर्ति, समानता, कार्यप्रियता और न्यायप्रियता की क़द्र की और वहां की महिलाओं की जानकारी की प्रवृत्ति की प्रशंसा की, वहां उनकी अध्यात्मिक ज्ञान-शून्यता पर भी खेद प्रकट किया।

८ दिसम्बर १९०४ ई० को स्वामीजी अमेरिका से स्वदेश लौटे और यहां आकर कुछ दिन मथुरा में रहे। कुछ लोगों ने स्वामीजी से अनुरोध किया कि वे नयी संस्था स्थापित करें और एक नया वेदान्त प्रचारक पन्थ चलायें; पर स्वामीजी ने कहा कि सभी संस्थाये और सभायें राम की ही (अर्थात् मेरी ही) तो हैं। मैं नया धर्म क्या चलाऊं—वेदान्त तो हिन्दुओं का प्राचीन शास्त्र है।

सिद्धान्त

"यह शरीर मेरा है, किन्तु मैं शरीर नहीं हूं। मैं अपने शरीर से

बिल्कुल अलग हूँ। मैं आत्मा हूँ—मेरी आत्मा और प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा ईश्वर का अंश है। एक ही परमात्मा सब मनुष्यों में है। वह प्रकृति में—हवा, पानी, पहाड़, सूर्य, चन्द्र और फल-फूलों में है। कोई भी व्यक्ति पराया नहीं है—प्रकृति हमारी ही है इसलिए शिथिलता, दुर्बलता, भयातुरता, स्वार्थ और मोह को छोड़कर हम सब की भलाई के लिए प्रसन्नतापूर्वक काम में लगे रहें। मनुष्य अपने को शरीर ही समझ कर उसकी इच्छाओं की पूर्ति में उचित-अनुचित कार्य करता है—संसार के अन्य लोगों को पराया समझता है और उन्हें लूटना बुरा नहीं समझता—अपने सम्बन्धियों और धन-दौलत से ऐसे चिपटा रहता है कि उनके चले जाने पर असीम दुःख करता है—अपनी शारीरिक मृत्यु से भी बहुत डरता है, पर यह सब उसकी मूर्खता है। परमात्मा की कृपा हुई और वह किसी महात्मा के सम्पर्क में आया तभी उसका जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण बदल सकता है और तब वह सांसारिक सुख-भोग को तुच्छ समझ कर सच्चे आत्म-दर्शन के लिए बेचैन हो जाता।"

स्वामी रामतीर्थ ने उपर्युक्त शब्दों में अपने सिद्धान्त का निचोड़ पेश करते हुए वेदान्त के उस ज्ञान के प्रति लोगों में जिज्ञासा उत्पन्न की है जो उपनिषदों और भगवद्गीता की जीवन-सम्बन्धी व्याख्याओं को विधिवत् पढ़ने से मालूम हो सकता है।

स्वामीजी अपने प्रत्यक्ष जीवन द्वारा अपने समय के लोगों में त्याग करने की प्रवृत्ति, आत्म-त्याग, सार्वभौम प्रेम, सदा प्रसन्न और निर्भय रहने का क्रियात्मक सन्देश देते थे। उनके मुखमण्डल पर सदा मुस्कराहट विराजती थी– वह पवित्र मस्तिष्क द्वारा [illegible] दे सकते [illegible] जाते थे जिनके अन्दर मधुरता और आध्यात्मिकता का [illegible] था। आत्म-निर्भरता और पवित्रता स्वामीजी के जीवन की [illegible]

वेदान्त

अपने सिद्धान्त को स्वामीजी ने सदा वेदान्त [illegible]

उन्होंने वैसे तो समय-समय पर अपने लेखों और व्याख्यानों द्वारा वेदान्त की अनेक परिभाषाएँ बतायी हैं, पर सबसे सरल और सर्वसाधारण की समझ में आने वाली उनकी यह परिभाषा है जिसमें वे कहते हैं—"किसी भी वस्तु को अपनी निजी सम्पत्ति न समझना वेदांत है। और इसका प्रचार करना ही वेदान्त के प्रचार का सर्वोत्तम ढंग है।"

वैसे तो स्वामीजी ने बताया है कि वेदों के अन्त अर्थात् उपनिषदों की शिक्षा को वेदान्त कहते हैं। भगवद्‌गीता में उसे सरल और सर्वप्रिय ढंग से बताया गया है। ऋषियों की इस शिक्षा पर हिन्दुओं का गौरव उचित ही है—पाश्चात्य जगत् के कैण्ट और हेगल जैसे दार्शनिकों ने उस शिक्षा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, परन्तु उपनिषदों और वेदांत पर सर्वोत्तम भाष्य जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्य का है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर है। मानवीय आत्मा तो परमात्मा का अंश और प्रकाश मात्र है। परमात्मा के सिवा और किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। मनुष्य की आंखों पर मोह का पर्दा पड़ा रहता है इस लिए वह अपने को शरीर या मस्तिष्क समझता है और संसार के झूठे प्रेम में पड़ा रहता है। यही अज्ञानता उसके विनाश का कारण है। यह मोहमाया का पर्दा हटा कर परमात्मा के साथ अपनी एकता अनुभव कर लेना ही वेदान्त का उद्देश्य है और यही है मुक्ति एवं सुख प्राप्ति का साधन।

स्वामीजी कभी शरीर की पर्वाह नहीं करते थे—भोजन आदि ठीक और समय पर न करने के कारण उनकी पाचन-शक्ति बिगड़ गयी। घुटने से चोट लग जाने के कारण इन दिनों आप घर पर ही स्नान कर लेते थे। दीवाली के दिन स्वामीजी के मन में आया कि आज स्वयं चल कर गंगा जी में स्नान करूं। गंगा-स्नान के समय उनका पांव फिसला—तैरने की कोशिश की पर बहाव के आगे न टिक सके। इनके प्रिय शिष्य श्री नारायण स्वामी ने आकर उनकी लाश ढूँढी और विधिवत् अन्त्येष्टि संस्कार किया।

पंजाब के इस महान् संत और भारत के सच्चे वेदान्ती संन्यासी का

जन्म गुजरांवाला जिलेके एक छोटे-से गांव—मुरारीवाला में २२ [illegible] १८८३ ई० को हुआ था। आपके पिता गोसाई हीरानन्द [illegible] ब्राह्मण थे और पुरोहिती का काम कर यजमानों के [illegible] करते थे।

शिशु रामतीर्थ की माता बचपन में ही स्वर्गवासिनी हो गयी थीं, इस लिए बालक का पालन-पोषण गाय के दूध पर हुआ। [illegible] उनकी चाची उन्हें मंदिर ले जाया करतीं और वहां वे [illegible] और भागवत की कथायें सुनते थे। [illegible] सुनते ही बालक रामतीर्थ स्वयं मंदिर पहुंच जाता [illegible] तन्मय होकर कथा सुना करता। उन दिनों की प्रथा के [illegible] विवाह बचपन में ही हो गया था, पर इससे उनकी पढ़ाई [illegible]। गाँव की पढ़ाई के बाद गुजरांवाला के [illegible]। आपके पिता आपको [illegible] गए थे। उनके परामर्श से आप लाहौर मिशन [illegible]। एफ० ए० में फारसी के [illegible]। [illegible] असाधारण [illegible] थी। बी० ए० के बाद एम० ए० पास करके [illegible] दिन कालेज में अध्यापन कार्य भी किया, पर [illegible] काम के लिए ही पैदा हुए थे। इसलिए नौकरी [illegible]।

: पांच :

लोकमान्य तिलक

भारत की राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस इस समय तक भी नरम दलवालों की एक प्रार्थनापत्र भेजने वाली और अनुनय-विनय करने वाली साधारण सभा ही बनी रही जब तक कि भारतीय आकाशमण्डल में माननीय बालगंगाधर तिलक-जैसे महातेजस्वी नक्षत्र का उदय नहीं हुआ। लोकमान्य तिलक ने सार्वजनिक सेवा का श्रीगणेश एक विद्यालय की स्थापना और 'केसरी' तथा 'मराठा' पत्रों के उद्‌घाटन से किया। इस महावीर मानव ने सर्वप्रथम भारतीयों को सिखाया कि "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। और हम उसे लेकर रहेंगे।" उनकी प्रतिभा, विद्वत्ता और कार्यकुशलता देखकर सारा देश उनकी ओर आकृष्ट हो गया और शीघ्र ही वे भारतीय राजनीति में सर्वाग्रगण्य समझे जाने लगे। सदियों से पराजित यह देश अपना स्वाभिमान खो चुका था और पगपग पर उसे राष्ट्रीय अपमान सहना पड़ता था। लोकमान्य भारतीयों के हृदय में निर्भयता, स्वदेश-प्रेम और आत्माभिमान की भावना जाग्रत करने के प्रयत्न में लग गये। इसके लिए उन्होंने सर्वप्रथम शिवाजी-जयन्ती मनाने का आयोजन देश के सन्मुख रखा। जनता ने इस योजना का समादर किया और सम्वत् १९५२ के ज्येष्ठ मास में यह महोत्सव बड़ी धूमधाम से पूना में मनाया गया।

अङ्गरेज़ सरकार ने लोकमान्य की योजना को सफल होते देख

उनके बढ़ते हुए प्रभाव को नष्ट करने का विचार कर लिया और उन्हें गिरफ्तार कर १८ मास के लिए कारावास दण्ड दे दिया।

लोकमान्य तिलक संस्कृत, अंग्रेजी और गणित-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे और उन्होंने आर्यों के मूल स्थान तथा 'गीता-रहस्य' की रचना कर अपने देशवासियों पर अपनी अगाध विद्वत्ता की छाप लगादी और इस प्रकार संसार के साहित्य प्रेमियों के बीच भी अपनी ख्याति का डङ्का बजा दिया।

"बंग भंग और स्वदेशी आंदोलन"

जेल से छूटकर लोकमान्य ने फिर अपनी कार्यशीलता जारी कर दी। इसी बीच भेद-नीति का प्रयोग करते हुए अंग्रेज सरकार ने बङ्गाल के दो भाग कर दिये। सारे देश में इसका प्रबल विरोध हुआ। विदेशी का बहिष्कार और स्वदेशी का प्रचार-आंदोलन शुरू हुआ और लोकमान्य ने इस आन्दोलन का सञ्चालन किया। इस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन काशी में हुआ था उसके बाद कलकत्ते में हुआ। दोनों अधिवेशनों में विदेशी वस्त्र के बहिष्कार का प्रस्ताव पास हुआ जिसका श्रेय लोकमान्य को मिला। उसके बाद बंगाल में इस आन्दोलन ने इतना जोर पकड़ा कि नवयुवकों के दल ने गुप्त रूप से कार्य करना शुरू कर दिया। इस दल के ही एक नवयुवक ने मुजफ्फरनगर के एक अंग्रेज कलक्टर के परिवार पर गोली चलाई जिससे दो महिलाओं की हत्या हो गई। इसके पश्चात् घोर दमन हुआ। लोकमान्य ने 'केसरी' पत्र में इस सम्बंध में जो कुछ लिखा उसके कारण उन पर मुकदमा चलाया गया और लोकमान्य को पुनः ६ साल का निर्वासन दण्ड दे दिया गया।

इस दण्ड के समाचार से सारे देश में कोलाहल मच गया। जगह जगह सभायें हुई और दण्ड के विरुद्ध प्रस्ताव पास हुआ। [illegible]

शहरों में हड़तालें हुईं और बम्बई में कई दिनों तक दुकानें नहीं खुलीं।

निर्वासन-दण्ड भोगने के लिए लोकमान्य को माण्डले भेज दिया गया। "गीता-रहस्य" की रचना इसी निर्वासन-काल में हुई, जिसका आदर न केवल भारत में ही, किंतु सारे संसार में हुआ।

जब लोकमान्य निर्वासन दण्ड से मुक्त हुए तो युरोप में प्रथम विश्वव्यापी महायुद्ध छिड़ चुका था। लोकमान्य का स्वास्थ्य बहुत गिर चुका था। फिर भी उन्होंने कांगरेस का संगठन किया और उसके नरम और गरम दोनों दलों में एकता स्थापित कर एक सर्वसम्मत योजना तैयार की जिसके आधार पर आगे चलकर भारत को "मिण्टो मार्ले" सुधार प्राप्त हुआ। लोकमान्य ने "होमरूल लीग" की स्थापना कर उसके द्वारा देशव्यापी प्रचार का श्रीगणेश किया और शिक्षित भारतवासियों में स्वराज्य की प्रबल भूख पैदा कर दी।

विलायत यात्रा

सर वैलेण्टाइन शीरोल नामक अंगरेज ने एक पुस्तक लिख कर भारत में अशांति का जनक लोकमान्य को सिद्ध किया था। इस पुस्तक की लेखन-शैली और इसमें कही गई बातें मिथ्या प्रपंच से परिपूर्ण थीं अत. लोकमान्य ने विलायत जाकर उसके लेखक सर शीरोली पर प्रिवी-कौंसिल में दावा कर दिया। पर लाखों रुपये खर्च हो जाने पर भी गोरे न्यायाधीशों ने न्याय के नाम पर लोकमान्य को अँगूठा दिखा दिया। फिर भी उन्होंने अपनी यात्रा का सदुपयोग किया और वहाँ के मजदूर-दलके प्रमुख नेताओं से मिले जिससे उन्हें कई स्थानोंपर भाषण देने और प्रचारात्मक पुस्तकाओं के बांटने का अवसर मिल गया और विलायत के लोग भी भारत की समस्याओं में दिलचस्पी लेने लगे। वहां के अंगरेजी दैनिक "डेली हेरल्ड" ने लोकमान्य को काफी प्रोत्साहन दिया।



लोकमान्य तिलक

उसी यात्रा में आपको अमेरिका के प्रेसीडेंट विल्सन से मिलने का अवसर मिल गया और उनके परामर्श से इन्होंने शान्ति परिषद् में [illegible] भारत की ओर से एक आवेदन-पत्र भेजा।

अमृतसर कांग्रेस

विलायत से भारत लौटने पर लोकमान्य अमृतसर कांग्रेस में सम्मिलित हुए और वहां जो नवीन सुधारों के सम्बन्ध में उन्होंने विचार प्रकट किये वे सब सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गए। लोकमान्य का विचार यह था कि मिण्टो-मार्ले सुधार के रूप में हमें जो कुछ मिल रहा है उसे ले लेना चाहिए और आगे के लिए आन्दोलन जारी रखना चाहिए।

जीवन-कार्य

लोकमान्य का सारा जीवन संघर्ष, दमन और जेल-यातना में व्यतीत हुआ। उन्होंने बार-बार विदेशी सरकार से टक्कर ली और उन नरम दलियों की भी खूब खबर ली, जो अनुनय-विनय और प्रार्थना-पत्रों के द्वारा ब्रिटिश सरकार को पिघला कर उनसे स्वराज प्राप्त करने का स्वप्न देख रहे थे।

अपने प्रबल एवं उग्र विचारों के कारण लोकमान्य अपने साथी और समकालीन नरम दली नेता श्री गोपालकृष्ण गोखले से भी विरोध कर बैठे और इस प्रकार इन्हें दोनों मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ा। फिर भी कर्तव्य-पथ से विचलित न हुए, और सारे देश में घूम-घूम कर व्याख्यान देते और लेख लिखते या लिखाते रहे। अपने विचारों का प्रचार करने में इन्होंने कभी संकोच नहीं किया। सदा देश-हित के चिन्तन में लगे रहे। असहयोग का जो आन्दोलन गान्धीजी ने चलाया था उसके आरम्भ में ही [illegible] हो गए थे।

किन्तु जनता ने इन्हें उस ऋण-भार से मुक्त करा दिया।

चौसठ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी उनमें प्रचण्ड कार्य-शक्ति थी और वे अहर्निश स्वदेश-चिन्ता में लगे रहते थे।

कार्याधिक्य के कारण उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था फिर भी वे उसकी परवाह नहीं करते थे और यात्रा का क्रम जारी रखते थे।

१९२० ई० में कोलम्बो-स्थित भारतवासियों ने लोकमान्य की चौसठवीं वर्षगांठ बड़ी धूम-धाम से मनाई और उसमें भाग लेने के लिए उन्होंने स्वयं लोकमान्य को आमंत्रित किया। वे कोलम्बो गये पर वहां से लौटते समय सर्दी लग जाने के कारण ज्वर-ग्रस्त होगये। सारा देश उनकी बीमारी से बेचैन हो उठा।

मन्दिरों में प्रार्थनाएं हुईं। सभा समाजों द्वारा स्वस्थ्य प्राप्ति की कामना की गई। ३१ जुलाई १९२० को आप स्वर्गवासी हो गए।

बाल्य-काल और शिक्षा

तिलक का जन्म एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन के पिता पं० रामचन्द्र गंगाधर राव संस्कृत के विद्वान् थे और गणित में उनकी विशेष गति थी। वे एक साधारण अध्यापक से स्कूलों के डिप्टी इन्सपेक्टर हो गए थे। लोकमान्य अपने पिता की चार सन्तानों में एक-मात्र पुत्र थे। इनका जन्म२३ जुलाई सन् १८५६ ई० को रत्नागिरि में हुआ था। इनका जन्म नाम केशव था, पुकारने का नाम बलवन्तराव था और संक्षिप्त नाम केवल बाल था। इसलिए महाराष्ट्रपरिपाटी के अनुसार उनका नाम बाल गंगाधर तिलक हुआ। बचपनसे ही बालगङ्गा-धर में अद्वितीय प्रतिभा विकसित होने लगी थी। स्कूल में शिक्षा पाने के अतिरिक्त इनके पिता इन्हें घर पर भी पढाते थे और उन्होंने बचपन में ही अपने पुत्र को संस्कृत के श्लोक कण्ठस्थ करा दिये थे। आठ वर्ष की अवस्था में ही लोकमान्य संस्कृत ग्रन्थों को पढने और समझने लगे थे।

लोकमान्य जब १६ वर्ष के हुए तभी उनके पिता [illegible]। किन्तु इससे उनके पठन-पाठन में बाधा नहीं पड़ी [illegible] के पश्चात् उन्होंने कालेज से बी० ए०, एल-एल० बी० [illegible] पास करली। किन्तु वकालत पास करने पर भी इन्होंने [illegible] पेशा नहीं किया और न सरकारी नौकरी की [illegible], क्योंकि [illegible] से ही उनके मन में सार्वजनिक सेवा की भावना [illegible] थी।

लोकमान्य अपने मित्र श्री आगरकर और [illegible] लेखक श्री चिपलूणकर के सहयोग से [illegible] प्रभाव उनपर ऐसा पड़ा कि उन्होंने [illegible] पूने में न्यू इंगलिश स्कूल की स्थापना करके [illegible] श्रीगणेश कर दिया। इसके पश्चात [illegible] नीति से जिस प्रकार हुई और उन्होंने [illegible] साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किये, उनका उल्लेख [illegible]।

राजनीति-प्रवेश

वैसे तो लोकमान्य तिलक [illegible] और १८६५ ई० से [illegible] पूना [illegible] तक आपने कांग्रेस में [illegible] १८६८ ई० में आपने कांग्रेस के [illegible] बीसवीं सदी के आरम्भ में [illegible] से काम किया उनमें लोकमान्य तिलक [illegible]।

जिन दिनों बंगाल में [illegible] हुआ तो लोकमान्य के [illegible] पड़ी सत्ता से उनका [illegible] में दलबन्दी के [illegible] कांग्रेसी नेताओं की [illegible] आयी। [illegible]

(१६०७) में यह विरोध स्पष्ट रूप में प्रकट हो गया। कांग्रेस का उग्र और नरम दल यहाँ तक लड़ पड़ा कि वाग्युद्ध के बाद हाथापायी और उसके अनन्तर कुर्सियों के प्रहार की नौबत आगयी। लोकमान्य का अनुयायी उग्र दल कांग्रेस से अलग हो गया।

वंगभग के प्रसंग को लेकर लोकमान्य ने अपने 'केसरी' और 'मराठा'' में जो लेख निकाले उनके कारण १६०८ ई० में उन पर राज-द्रोह का मामला चलाया गया, जिसके सिलसिले में आपको ६ वर्ष का कारावास और १०००)जुर्माने की सज़ा हुई।

इस कारावास दण्ड की अवधि पूरी करने के लिये लोकमान्य तिलक को माण्डले (वर्मा) सेन्ट्रल जेल भेज दिया गया। लोकमान्य ने इस कारावास-काल को जिस शान्तिपूर्ण एवं सात्विक ढंग से अध्ययन और लेखन-कार्य में व्यतीत किया वह आगे चलकर भारतीय नेताओं के लिए अनुकरणीय होगया। जगत्प्रसिद्ध महान ग्रंथ "गीता रहस्य" उन्हीं दिनों लिखा गया। ग्रन्थ लेखन के अतिरिक्त लोकमान्य ने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करने और उन पर नोट लिखने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी उस जेल-जीवन में ही सम्पन्न किया। लोकमान्य को जेल से छुड़ाने के लिए कितने ही देशी, विदेशी, विद्वानों, नेताओं और संस्थाओं ने सरकार से अनुरोध किया। लोकमान्य के कारावास के दिनों ही में उनकी पत्नी का भी स्वर्गवास हो गया।

जेल से मुक्त होकर लोकमान्य ने संसार की परिवर्तित स्थिति का अध्ययन किया। १६१४ ई० में युरोप का प्रथम महासमर आरम्भ हो चुका था। लोकमान्य ने उचित अवसर जान स्वराज्य की दुन्दुभि बजा दी। एनी बीसेण्ट के 'होमरूल' आन्दोलन को लोकमान्य ने पूर्ण संबल प्रदान किया और देश के कोने कोने में स्वतन्त्रता का शंख फूँक दिया। "स्वराज्य मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा" यह मंत्र उन्होंने सारे देश के शिक्षित भारतीयों तक पहुँचा दिया।

१९१९ ई० में आप अमृतसर कांग्रेस में सम्मिलित हुए, जिसमें आपने ब्रिटिश सरकार द्वारा किये गये माण्टेगू चेम्सफोर्ड सुधार को अपर्याप्त और असन्तोषजनक बताया।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि इस बीच महात्मा गांधी भारतीय राजनीति में प्रवेश पा चुके थे और अपने सत्याग्रह-सम्बन्धी प्रयोग चला रहे थे। युद्धकाल में सरकार को सहायता देने और सुधारों की [illegible] आलोचना करने की गांधीजी की नीति लोकमान्य को पसन्द नहीं आती थी और वे राजनीति में ऐसी साधुतापूर्ण नीति को देश के लिए हानिकर समझते थे। उन्होंने गांधीजी से स्पष्ट कह दिया था कि जब (ब्रिटिश) सरकार हमें स्वराज्य देने का वचन दे तभी हमें उसकी किसी प्रकार की सहायता करनी चाहिए। उसकी नीयत देखकर ही हमें सहयोग का हाथ बढ़ाना या खींचना चाहिए।

लोकमान्य १९१८ ई० में दिल्ली कांग्रेस के सभापति चुने गये थे किंतु उन दिनों वेलेन्टाइन शिरोल के मामले के सिलसिले में इंग्लैंड में रहने के कारण उस अधिवेशन के अवसर पर भारत नहीं आ सके।

माण्टेगू चेम्सफोर्ड सुधार के सिलसिले में अपनी व देश की माँग निश्चित करने के लिए १९२० में आपने डेमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी का संगठन किया, किन्तु इसी वर्ष बीमारी के कारण आपका बम्बई के सरदारगृह होटल में स्वर्गवास हो गया। यह घटना ३१ जुलाई १९२० ई० की है। इसी दिन मानो देश में घोर राजनैतिक अन्धकार छा गया। एक कुशल योद्धा, प्रबल राजनीतिज्ञ, प्रकाण्ड विद्वान भारतीयों को बिलखता छोड़कर चल बसा। अपने अद्भुत गुणों के कारण ही भारतीयों के हृदय में आपके प्रति ऐसी प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी कि उन्होंने आपको "लोकमान्य तिलक" के नाम से सम्बोधित किया, जो इस युग के विचारों और कार्य-धारों के लिए एक [illegible] है।

: छ: :

लाला लाजपतराय

पाँच नदियों के सुन्दर, सुरम्य और कर्मठ प्रान्त पंजाब में बहुत दिनों से कोई अखिल भारतीय ख्याति का नेता नहीं हुआ था। जिस भूमि से विदेशियों के प्रभाव और अधिकार के कारण अपनी संस्कृति, अपने गौरव और अपने राजनीतिक जीवन की गन्ध मिट-सी गयी थी उसमें फिर से उन भावनाओं का संचार स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने किया था। जिन दिनों पंजाब पश्चिमी सभ्यता के प्रवाह में बह चला था और ऐसा प्रतीत होता था कि वह आत्म-विस्मृति के गहरे गर्त में विलीयमान हो जायगा उसी समय उसे लालाजी का ऐसा ठोस नेतृत्व प्राप्त हुआ जिसने इस प्रान्त को न केवल आत्म-चेतना और कर्त्तव्य-ज्ञान का पाठ सिखाया प्रत्युत सोते हुए सिंह ने एक बार फिर जाग कर अपनी धीरता, वीरता और गम्भीरता से सब को चमत्कृत कर दिया। पिछड़ा हुआ पंजाब प्रान्त आगे बढ़ा और उसने सब दिशाओं में अपनी गतिविधियाँ अग्रसर कर दीं।

जन-सेवा-प्रवेश

लालाजी ने छात्रावस्था से ही राजनीति में प्रवेश कर दिया था। कांग्रेस की स्थापना के समय वे नवयुवक थे और उनके चौथे अधिवेशन (१८८८ ई०) में वे प्रयाग पहुँचे। वहाँ कौंसिलों में सुधार करने के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव रखा गया था लालाजी ने उसका प्रबल समर्थन

किया। उन दिनों लालाजी की [illegible]
परन्तु इस अनुभव शून्य अल्पावस्था में ही आपने [illegible]
जो भाषण दिया उसे सुन्दर [illegible] । [illegible]
वक्तृता में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के [illegible]
के विचारों का प्रबल खण्डन किया। इसके बाद [illegible]
विधिवत सम्बद्ध हो गये और उसके [illegible]
करने लगे।

१९०४ ई० में कांग्रेस का जो अधिवेशन [illegible]
प्रस्ताव हुआ कि एक [illegible] विलायत भेजा जाय जिससे [illegible]
जनता पर प्रभाव पड़े और यह भारत की [illegible]
सरकार को प्रेरित कर सके। इस प्रस्ताव [illegible]
कृष्ण गोखले, युक्त प्रदेश से पं० [illegible]
लाला लाजपतराय ने एक [illegible]
किया। बाद में [illegible]
दर तो विलायत न जा सके, परन्तु श्री [illegible]
१९०५ ई० में इंग्लैंड गये।

इंग्लैंड में लालाजी ने [illegible]
सामने भारतवासियों का [illegible]
कोण उपस्थित किया। [illegible]
में भाषण दिये और वहाँ के [illegible]
कराये। [illegible]
राजनीतिज्ञों से भेंट की, पर [illegible]
माँगने की नीति से [illegible]। [illegible]
वासियों को यही सन्देश दिया कि [illegible]
अधिकार न देंगे [illegible]
लन करने की आवश्यकता है, क्योंकि [illegible]

दूसरों का मुंह ताकती है वह कभी उन्नति नहीं कर सकती।

वंग-भंग और स्वदेशी आंदोलन

१६०५-६ ई० में लार्ड कर्ज़न की दुर्नीति से सारे देश में अशान्ति फैल गयी। उन्होंने बॅगाल के दो टुकड़े करके सारे देश में अशान्ति और कोलाहल उत्पन्न कर दिया। लालाजी ने आन्दोलन में पूर्णत: भाग लिया। विदेशी-बहिष्कार और स्वदेशी-प्रचार के लिए उन दिनों देश के कितने ही नगरों में आपके धुआंधार भाषण हुए। १६०५ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन श्रीगोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता में काशी में हुआ। लालाजी ने इस अधिवेशन में सरकार की दमन-नीति की कड़ी आलोचना की। फलतः काशी अधिवेशन के बाद कांग्रेस में दो दल हो गए—एक तो गरम राष्ट्रीय दल था जिसमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और श्रीविपिनचन्द्र पाल थे। उन दिनों "लाल, बाल, पाल" का नाम प्रसिद्ध हो गया। और दूसरा था नरम दल जो शासन की त्रुटियों की आलोचना करते हुए डरता था। इस दल में सर फीरोज़शाह मेहता, श्री गोखले, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और पं० मदनमोहन मालवीय थे। उन दिनों लालाजी ने सारे युक्त-प्रदेश और पंजाब में घूम-घूमकर गरम दल का सन्देश जनता को सुनाया था।

इन्हीं दिनों पंजाब के प्रसिद्ध गरम दली अखबार 'पंजाबी' पर सरकार ने मुकद्दमा चलाया और उसके मालिक लाला जसवन्तराय को छः मास कैद की सज़ा दे दी तो पंजाब की जनता में खूब जोश फैला और उसी अवसर पर "अंजुमन मुहिब्बाने वतन" नामक सभा की स्थापना हुई। लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह आदि नेता इस में व्याख्यान देते थे। इस सभा के सिल-सिले में कई व्यक्ति गिरफतार कर लिये गए। १६०७ ई० में लालाजी



ला० लाजपतराय

को गिरफ्तार कर लिया गया और आप गुप्तरूप से पुलिस-द्वारा स्टेशन पहुँचा दिये गये जहां से रेल पर आपको कलकत्ता के पास 'डायमण्ड हार्बर' के लिए भेज दिया गया। वहां से रंगून (बर्मा) पहुंचाया जाकर आपको १६ मई १९०७ को मांडले पहुंचा दिया गया। वहां आप नजर बन्द कर दिये गए। इस नजरबंदी में लालाजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। उन्हें न किसी से मिलने दिया जाता था, न खानपान की समुचित व्यवस्था थी। आपकी डाक को भी गुप्त पुलिस खोला करती थी।

इधर सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। उस समय कांग्रेस की बागडोर नरमदल के हाथ में थी। दिसम्बर के अन्त में सूरत में होने वाला कांग्रेस अधिवेशन आपसी मतभेद के कारण भंग हो गया। उसी समय लालाजी नजरबंदी से छूटकर सूरत पहुंचे थे और उनका वहाँ धूम-धाम से स्वागत हुआ था। आपने कांग्रेस में एकता स्थापित करने की पूर्ण चेष्टा की; पर कांग्रेस का अधिवेशन नहीं हुआ। उसके बदले श्रीअरविन्द घोष की अध्यक्षता में राष्ट्रीय दल की और रास बिहारी बोस की अध्यक्षता में नरमदल वालों की सभाएं अलग हुई। लालाजी ने दोनों में भाग लिया। १९०७ ई० में अखिल भारतीय स्वदेशी सभा के सभापति लालाजी ही बनाये गए। इसवर्ष लालाजी ने युक्त प्रदेश, उड़ीसा और मध्य देश के अकाल-पीडितों की सहायता के लिए धन-संग्रह किया और स्वयंसेवक दल संगठित किया। १९०८ ई० में फिर कांग्रेस के दोनों दलों को एकत्रित करने का प्रयत्न हुआ जिसमें लालाजी ने भी भाग लिया पर परिणाम कुछ न हुआ। इसी वर्ष आपने दुबारा विलायत यात्रा की और वहाँ के अखबारों में लेख लिखे तथा इंग्लैंड-स्थित भारतीय विद्यार्थियों में व्याख्यान दे-दे कर उनमें जागृति फैलायी।

उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध जो अत्याचार हो रहे थे, उनके विरुद्ध गांधीजी ने नेतृत्व किया था। इंग्लैंड में इस सिलसिले में प्रबल आन्दोलन लालाजी ने ही किया। २२ फर-

वरी १९११ ई० को आप पुत्र-मरण के कारण विलायत से स्वदेश लौट आये।

१९११ ई० में ही लालाजी ने पंजाब में शिक्षा-लीग की स्थापना की जिसके द्वारा गरीब और अछूतजाति के विद्यार्थियों में शिक्षा-प्रचार की व्यवस्था की गयी। दूसरे वर्ष (१९१२ ई०) आप लाहौर के म्युनिसिपल कमिश्नर चुन लिये गये। उस वर्ष कांग्रेस-अधिवेशन बाँकी-पुर (पटना) में हुआ और उसमें आप सम्मिलित हुए। इसी अधिवेशन में लालाजी ने सर्व-प्रथम महात्मा गाँधी की दक्षिण-अफ्रीका प्रवासी भारत-वासियों की सेवा के लिए प्रशंसा करते हुए कहा—"जो लोग मूर्तिपूजक हैं, बेहतर है कि वे लोग गाँधीजी जैसे देवता की पूजा करें।" इसके पश्चात् लोग लालाजी की दूरदर्शिता और भविष्यकथन की सत्यता की शक्ति के कायल हो गए।

प्रवासी भाइयों की सहायता के लिए जब १९१२-१३ ई० में महात्मा गाँधी ने दक्षिण-अफ्रीका में सत्याग्रह का प्रयोग किया, तो श्रीयुत् गोखले और लाला लाजपतराय ने उनकी सहायता के लिए सारे देश में घूम-घूमकर धन एकत्रित किया। लालाजी ने अकेले पंजाब से २०-२५ हज़ार रुपये जमा करके उस कार्य के लिए गोखले को भेजे थे।

१९१३ ई० मे आप करांची कांग्रेस में सम्मिलित हुए और उसमें यह प्रस्ताव पास कराया कि प्रवासियों की समस्या और भारतीय शासन की दुर्दशा के सम्बन्ध में प्रचार-कार्य के लिए एक शिष्टमण्डल विलायत भेजा जाय। लालाजी भी इस शिष्टमण्डल में सम्मिलित होकर इंग्लैंड गये। इस बार आपने वहां रुक कर आर्य-समाज के प्रचार का भी काम किया। इंग्लैंड से आप जापान गये, पर उन्हीं दिनों प्रथम युरोपीय महायुद्ध छिड़ गया जिससे आप हिन्दुस्तान न लौट सके। आप फिर इंग्लैंड लौट गये। वहां कुछ आर्य-समाज सम्बन्धी कार्य करने के बाद आप १९१४ ई० में अमेरिका गये। १९०५ ई० में आप एक बार पहले

भी अमेरिका गए थे, पर उस बार वहां केवल तीन सप्ताह ठहरे थे। इस बार वहा ठहरकर वहां की राजनीतिक संस्थाओं और शिक्षा-प्रणाली का ज्ञान आपने निकट से प्राप्त किया। इस बार आपने सारे अमेरिका का भ्रमण किया और 'संयुक्त राष्ट्र अमेरिका पर एक सुन्दर पुस्तक लिखी। उन दिनों आप अपने लेख अमेरिका से हिन्दुस्तान के लिए माडर्न रिव्यू, कामनवील, अभ्युदय [साप्ताहिक] और मर्यादा [मासिक] को भेजते रहे। इन दिनों अमेरिका में रहकर आपने 'तरुण भारत' "इग्लैंड पर भारत का ऋण" और "भारत का भविष्य" नामक तीन पुस्तकें प्रकाशित करायी जिनमें से पहली (तरुण भारत) का भारत में आना रोक दिया गया। अमेरिका में लालाजी विभिन्न विद्वानों और राजनीतिज्ञों से मिल कर उनसे भारत के लिए सहानुभूति प्राप्त करने का कार्य भी करते रहे।

१९१६ ई० में श्रीमती एनी बीसेंट ने लोकमान्य तिलक के सहयोग से भारत में स्वराज्य प्राप्ति आन्दोलन की धूम मचा दी। देश भर में जगह-जगह "होमरूल लीग" की स्थापना हो गयी। इस पर लालाजी ने अमेरिका में भी १५ अक्तूबर (१९१६) को 'इंडियन होमरूल लीग' की स्थापना कर दी। लालाजी को इस काम में प० केशवदेव शास्त्री और डा० हार्डीकर ने भी बड़ी सहायता की। डा० हार्डीकर इस संस्था के मन्त्री बने और लालाजी सभापति। अमेरिका के अनेक नगरों में उसकी शाखाएं स्थापित हुईं। इस प्रकार लालाजी ने लोकमान्य तिलक के कार्य में हाथ बँटाया और अमेरिका में भारतीय स्वराज्य के पक्ष में काफी प्रचार किया। वहीं से आपने इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीलायड जार्ज और भारत सचिव माटेग्यू के नाम खुली चिट्ठियां लिखीं। अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र "न्यूयार्क टाइम्स" "न्यूयार्क ईवनिंग पोस्ट" में भारतीय पक्ष को दर्शाने वाले लेख लिखे और स्वेनी, जर्मन, स्वीडिश, यहूदी और फ्रेंच भाषाओं में बहुत से लेख प्रकाशित कराये। अमेरिका का भारत से घनिष्ठतर व्यापार-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए

लालाजी ने एक कम्पनी खोली जिसके द्वारा हिन्दुस्तानी माल अमेरिका में अधिक-से-अधिक दामों पर बेचने की व्यवस्था की गयी। 'इंडियन इन्फामेंशन ब्यूरो' की स्थापना भी आपने की।

पंजाब का हत्याकाण्ड

जिन दिनों लालाजी अमेरिका में ही थे उसी समय (१९१९ ई०) में पंजाब में ओडायर-शाही का भीषण हत्याकांड हो गया जिससे सारा देश विक्षुब्ध हो उठा। लालाजी जलियांवाला बाग के भयंकर रक्तपात का हाल पढ़कर बहुत छटपटाये। इनके प्राण स्वदेश में थे, शरीर विदेश में। उस समय लालाजी ने तरुण-पंजाब के नाम जो चिट्ठी भेजी उसमें उन्होंने कहा कि इस समय हिन्दुस्तान के एक मात्र नेता महात्मा गांधी हैं, इस लिए पंजाब को उन्हीं के बताये पथ पर चलना चाहिए। साथ ही आपने गांधीजी के नाम भी एक पत्र भेजा।

युद्ध समाप्त होने पर लालाजी भारत के लिए रवाना हो गये और २० फरवरी १९२० को आप बम्बई पहुँच गये। इस बार लालाजी का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। इसी वर्ष लालाजी ने एक भाषण में कहा कि मैं अब कोई धार्मिक या सामाजिक काम न करूंगा, क्योंकि देश-सेवा से बढ़कर संसार में और कोई धर्म नहीं है। स्वदेश लौटकर आपने संक्षुब्ध पंजाब का भ्रमण किया और जनता में जीवन का संचार कर दिया।

कांग्रेस के सभापति

१९२० ई० में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के सभापति आप ही चुने गये। उस समय आपने जो भाषण दिया वह बड़ा ही महत्व-पूर्ण और प्रभावशाली था। इसी अधिवेशन में महात्मा गांधी ने सरकार

से असहयोग करने का प्रस्ताव रखा। पंडित मदनमोहन मालवीय, श्रीविपिनचन्द्र पाल और महाराष्ट्र के नेता इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे। फिर भी बहुमत से गांधीजी का प्रस्ताव पास हो गया।

१६२० ई० में नागपुर में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन किया गया और उसमें भी असहयोग के प्रस्ताव पर मुहर लगी। लालाजी ने सारे देश में भ्रमण करके असहयोग का सन्देश सुनाया।

सरकार की कुदृष्टि आप पर पहले से ही थी। उसने आप को गिरफ्तार कर लिया और न्याय का नाटक करके १६ मास जेल की सज़ा दे दी। १६ अगस्त १६२३ ई० को स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर लालाजी जेल से छोड़ दिये गये।

कौन्सिल-प्रवेश का प्रश्न

जिस समय आप जेल से छूटे उस समय कांग्रेसी नेताओं के दो दलों में यह वाद-विवाद चल रहा था कि केवल रचनात्मक कार्य करना चाहिए या कौन्सिलों में भी जाना चाहिए। लालाजी दोनों ही के पक्ष में थे। दिल्ली में लालाजी की अध्यक्षता में (१६२३) में फिर काँग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ और दोनों दलों में समझौता हो गया। असहयोग-आन्दोलन शिथिल पड़ गया था क्योंकि जनता में अभी उतनी त्याग-भावना नहीं आई थी कि दमन होते हुए भी लम्बे समय तक कष्ट सहन करके आन्दोलन जारी रखती। स्वर्गीय देशबन्धु चितरंजन दास और पं० मोतीलाल नेहरू ने कौन्सिल-प्रवेश के लिए स्वराज्य दल की स्थापना की। लालाजी इस दल में सम्मिलित हो गये, किन्तु इस दल के सिद्धान्तों से पूर्णतः सहमत न होने के कारण आपने मालवीयजी के साथ एक 'स्वतन्त्र काँग्रेस दल' की स्थापना कर डाली। चुनाव में लालाजी दो जगहों से विजयी हुए। उनका दल फिर भी देशहित के कामों में 'स्वराज्य-दल' का साथ देता रहा। लालाजी

अपने दल के नेता स्वयं थे और उन्होंने अपने भाषणों से सरकार की बड़ी कटु आलोचनाएं कीं। पब्लिक सेफ्टी बिल और साइमन कमीशन पर लालाजी के भाषणों से केन्द्रीय एसेम्बली भवन गूंज उठा।

स्वर्ग वास

हिन्दुस्तानियों की योग्यता जांचने के लिए आने वाले इस साइमन कमीशन का सारे देश में बहिष्कार हुआ। ३० अक्तूबर (१९२७ ई०) को यह लाहौर पहुँचने वाला था। सरकार ने अशान्ति की आशका से १४४ धारा लगा दी। फिर जनता ने जुलूस निकालने का निश्चय करने के लिए सार्वजनिक सभा की जिसमें अपार भीड़ हुई। अन्त में जुलूस दिन के २ बजे सभास्थल से स्टेशन की ओर चला। इस जुलूस में लाला लाजपतरायजी, डा० सत्यपाल, रायजादा हंसराज, डा० आलम और डा० गोपीचन्द भार्गव आदि नेता सम्मिलित थे। स्टेशन पर रुक कर जुलूस साइमन-कमीशन के आने की राह देखने लगा। पुलिस अफसर और सरकारी अधिकारी वहां उपस्थित थे। जनता शान्त थी। पुलिस ने थोड़ी ही देर में अकारण जुलूस के नेताओं को पीटना शुरू कर दिया। पहले तो गोरे अफसर ही लाठी-प्रहार करते रहे, पीछे कान्स्टेबिल तक आगे बढ़े। गोरे पुलिस अफसरों में सुपरिन्टेन्डेण्ट भी था। लालाजी सबसे आगे थे इसलिए लाठी का प्रहार भी सबसे पहले उन्हीं पर हुआ। लालाजी पर प्रहार करने वाले दो गोरे पुलिस अफसरों में सुपरिंटेंडेंट का नाम सॉण्डर्स था। और भी कई नेताओं पर लाठियों की वर्षा हुई। लालाजी ने जो चोट छाती पर झेली उससे उनके सीने का चमड़ा छिल गया और सूजन आगयी। बाद में उन्हें तेज़ बुखार भी आगया। इस घटना के बाद भी शाम को फिर पं० मदनमोहन मालवीयजी के नेतृत्व में जुलूस निकला और सभा हुई, जिसमें पुलिस के लाठी-प्रहार की निन्दा की गई।

लालाजी को पुलिस अफसर के प्रहार से जो चोट लगी थी उससे उनकी दशा प्रतिदिन खराब होने लगी। १६ नवम्बर १६२८ को उनके शरीर में बहुत पीडा होने लगी और बुखार बहुत बढ़ गया। खान उप-चार हुआ, पर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। रात कठिनाई से गुजरी, प्रात:काल ६॥ बजे उनका स्वर्गवास हो गया।

लालाजी की मृत्यु पुलिस अफसर सॉण्डर्स के डंडे से होने के कारण सारा देश विक्षुब्ध हो उठा। यद्यपि सरदार भगतसिंह आदि वीर पंजाबी युवकों ने लालाजी के खून का बदला सॉण्डर्स की हत्या करके ले लिया, परन्तु इससे कितने नवयुवकों को बलिदान होना पड़ा और कितना खून बहा इसका हिसाब करना कठिन है।

जो हो, लालाजी जब तक जीवित रहे अपनी अगाध देशभक्ति, दृढता, वीरता, तेजस्विता और निर्भीकता से भारतमाता का मुख उज्ज्वल करते रहे।

जन्म और शिक्षा

लाला लाजपतराय का जन्म २८ जनवरी १८६५ ई० को हुआ था। आपके पूर्वज लुधियाना (पंजाब) जिले की जगराव मंडी के निवासी थे। आपके पिता लाला राधाकृष्ण शिक्षा-विभाग में थे। माता बडी सुशीला थीं और दान-पुण्य किया करती थीं।

चार-पांच वर्ष की अवस्था में ही आपकी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। बुद्धि असाधारण थी। पिताजी शिक्षा-विभाग में थे ही। लालाजी पहले लुधियाने के मिशन स्कूल में थे, पर पिता जी की बदली अम्बाला में हो गयी, तो वे वहां पढने लगे। १८८० ई० में आपने कलकत्ता और पंजाब दोनो ही विश्वविद्यालयों में मैट्रिक की परीक्षा पास की।

इसके बाद लालाजी ने पिता की आज्ञा से लाहौर में कालेज की शिक्षा आरम्भ की। साथ ही आपने मुख्तारी की परीक्षा भी पास कर

ली। कुछ दिन तक लालाजी ने अपने जन्म-स्थान (जगरांव मंडी) में मुख्तारी का काम भी किया, पर वे इससे सन्तुष्ट न हुए और रोहतक जाकर वहां वकालत की परीक्षा देने की तैयारी करने लगे। १८८५ ई० में वकालत पास करके आपने हिसार में वकालत भी शुरू कर दी १८९२ ई० में आप लाहौर चले गये।

लाहौर में सार्वजनिक कार्य का क्षेत्र विस्तृत कर लालाजी पहले तो आर्यसमाज और शिक्षा-प्रचार के कामों में लगे, पर पीछे देश में राजनीतिक आन्दोलन की लहर आ जाने पर आप उसकी ओर झुक गए और धीरे-धीरे देश के गण्यमाण्य प्रमुख नेताओं में हो गए।

पंजाब लालाजी जैसे निर्भीक, निःस्वार्थ; धीर-वीर-गम्भीर और महापराक्रमी नेता को पाकर धन्य हो गया था। पंजाब ही नहीं सारे भारतवर्ष की जनता उनकी सेवाओं की सदा ऋणी रहेगी और देश-सेवा के मार्ग में उनके चरण-चिह्नों पर चलकर अपना जीवन धन्य बनायेगी।



रवीन्द्रनाथ ठाकुर

: सात :

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

आधुनिक युग में महात्मा गांधी के बाद यदि सबसे अधिक मान किसी भारतीय महापुरुष का विदेशों में हुआ है, तो वे हैं, महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

दूध के समान दाढ़ी-मूंछों के बाल, घुटनों तक लटकता लम्बा चोगा, विशाल, दिव्य, और पैने नेत्र मानो साक्षात गुरु वशिष्ठ त्रेता से कलियुग में आगये हों और भारत-भू की दुर्दशा देख कर आश्चर्य से नेत्र विस्फारित करके देख रहे हों कि यह क्या हो गया।

यह है गुरुदेव महर्षि रवीन्द्रनाथ का चित्र, जिन्हें देखकर उनके जीवन-काल में दर्शन करने वालोंने अपनेको धन्य माना है और जिनकी एक-एक पंक्ति-रचना का अर्थ लगाने के लिए संसार के बड़े-बड़े विद्वान्, साहित्यिक और कवि, अध्यापक और अभ्यासी मानो डुबकियाँ लगाया करते हैं। रविबाबू ने सभी विषयों पर लेखनी उठाई थी—कवि तो वे जन्म से ही थे—उपन्यासकार, निबन्ध लेखक, नाटककार और राजनीतिक लेख लिखने वाले बाद में बने। आपका परिवार पहले ही से साहित्यिक सामग्री से संयुक्त था—वहां संगीत, काव्य और नाट्य-कला का मधुर और मोहक प्रवाह चला करता था, ऐसी अवस्था में उस वातावरण में पले हुए रविबाबू यदि शीघ्र ही विश्व की महानतम रचना—गीताञ्जली—प्रस्तुत करने में समर्थ हुए तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

विकास

नवयुवक रवीन्द्र ने स्कूल कालेज की नियमित शिक्षा अभी पूरी नहीं की थी और १७ वर्ष की अल्पावस्था में ही विलायत भेज दिये गये और वहां ब्राइटन-समुद्र-तटवर्ती सुरम्य उपनगर में अपने भाई सत्येन्द्र-नाथ के परिवार में रहने लगे। रविबाबू उन दिनों—उस नवतारुण्य की अवस्था में भी पेंट-कोट-टाई और हैट धारण करने के बजाय हिन्दुस्तानी पोशाक पहनते थे और उनकी लम्बी और ढीली-ढाली पोशाक देख कर इंग्लैंड-वासियों को कौतूहल होता था। जब ये बाहर टहलने निकलते तो कभी-कभी उन्हें देखने के लिए अंग्रेजों की भीड़ लग जाती। फिर भी रवीन्द्रबाबू ने अपना स्वदेशी बाना नहीं छोड़ा।

हिन्दुस्तानी रईसों की आदत के अनुसार रविबाबू ने वहां एक बार किसी भिखमंगे को पेनी के बदले क्राउन (गिन्नी) दे दिया। तो वह आश्चर्य से उनकी भूल बताने के लिए बोला, "आपने भूल से पेनी के बदले क्राउन (गिन्नी) दे दिया है।" इसी प्रकार एक गाड़ी-वान को फुटकर पैसा न होने पर बड़ा नोट दे दिया तो वह आश्चर्य करने लगा, पर रविबाबू के लिए ऐसी बातें सामान्य थीं।

ब्राइटन में उनकी पढ़ाई की व्यवस्था की गयी; पर उनका मन स्कूली विषयों में नहीं लगा। इस पर उन्हें कानून पढ़ने के लिए लण्डन भेज दिया गया जहां ये डाक्टर स्काट के परिवार में रहने लगे। किन्तु वहां कानून पढ़ने के बदले साहित्य और कविता का अध्ययन किया। उन्हीं दिनों आप बंगाल की मासिक 'भारती' के लिए लेख भी लिख-लिख कर भेजने लगे।

इंग्लैंड के लोगों का व्यस्त जीवन उन्हें नहीं भाया। वे फ्रांस भी गये और पैरिस का जीवन देखा। अंत में बिना कानूनी या कोई अन्य परीक्षा पास किये वे वहां से लौट आये। कहने की आवश्यकता

नहीं कि भारत से भी वे बिना कोई परीक्षा — मैट्रिक भी — पास किये इंग्लैंड गये थे।

साहित्यिक जीवन

इंग्लैंड से लौटकर रविबाबू ने कलकत्ते आने पर अपनी साहित्यिक क्रियाशीलता बढ़ा दी। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और निबन्ध से वे निरंतर बंग-साहित्य का भण्डार भरने लगे। भाषणों का क्रम भी उन्हीं दिनों जारी हुआ। अपने भ्रमण से रविबाबू ने जो कुछ सीखा था, उसका परिचय पाठकों और श्रोताओं को भी दिया।

किन्तु घरवालों ने आपकी इस साहित्यिक गतिविधि को पसन्द नहीं किया और आपके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने १८८१ ई० में उन्हें फिर इंग्लैंड जाकर बैरिस्टरी पास करने के लिए रवाना किया परन्तु जहाज़ पर ही बीमार होजाने के कारण रविबाबू मद्रास से लौट आये। उनके पिता की बैरिस्टरी पास कराने की आकांक्षा हृदय में ही रह गयी।

१८८३ ई० में बाईस वर्ष की अवस्था में रविबाबू का विवाह मृणालिनी देवी के साथ हो गया। उनका दाम्पत्य जीवन सुख से बीतने लगा। महर्षि देवेन्द्रनाथ ब्रह्मसमाज में दिलचस्पी रखते थे। और अपना अधिकांश समय धार्मिक पठन-पाठन और लेखन में लगाते थे। रविबाबू ने उस कार्य में भी हाथ बंटाया।

पिता ने पुत्र को ज़मींदारी के काम पर लगाने का प्रयत्न किया, पर वे इसमें सफल नहीं हुए। फिर भी कवि ने केवल राज-महल का सुख ही नहीं भोगा, उन्होंने उसके बाहर भी दृष्टि फेरी और वैभव-द्वार के बाहर दारुण दरिद्रता में फँसे उत्पीड़ित जन-समाज की दशा देखी और उनके साथ सहानुभूति प्रकट की। वे अपनी शैलाइदह-स्थित ज़मींदारी पर भी गये और वहाँ के किसानों की दयनीय हालत

को देख कर उसे पत्र रूप में चित्रित किया। ये पत्र भारतीय इतिहास की साहित्यिक निधि हैं।

तीस वर्ष की परिपक्व अवस्था हो जाने पर रविबाबू देश की दशा पर अधिक विचार करने लगे। ग्राम-वासियों की समस्यायें हल करने के लिए उन्हीं दिनों आपने ग्राम-पंचायत आदि के सुझाव पेश किये। ये ग्राम-उद्योगों के विकास के लिए भी चिन्ता करने लगे। इन सभी बातों को उन्होंने अपने साहित्य में स्थान दिया।

'विश्व-भराती'

रविबाबू को शिक्षा की प्रणाली से स्वाभाविक घृणा थी, क्योंकि यह थोथी और प्रचारात्मक मात्र है—वे उन ऋषियों की शिक्षा-प्रणाली प्रचलित करने के लिए मन दौड़ाते थे जिन्होंने 'सप्त महाव्रत'— सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, अस्वाद और निग्रह— द्वारा स्वयं घने और अन्धकारपूर्ण वनों में रह कर भी समस्त संसार को आलोकित किया हुआ था। रविबाबू को अन्त तक यही धुन रही कि वर्तमान स्कूल-कालेजों की शिक्षा-प्रणाली दोषयुक्त और व्यर्थ के आडम्बर से परिपूर्ण है। शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचारों को पूर्ण रूप देने के लिए उन्होंने 'विश्व-भारती' (शान्ति-निकेतन) कि शिक्षा-योजना सोची और १९०१ ई० में 'ब्रह्म-विद्यालय' की स्थापना कर दी बोलपुर स्टेशन के निकट उन के पिता ने अपनी एकान्त साधना के लिए जो स्थल चुना था वह धीरे-धीरे विश्व-साधना का केन्द्र बनने लगा।

रविबाबू की साहित्यिक रचनाओं से बहुतेरे लोग उन्हें कोरा कवि, काल्पनिक और पागल तक समझते थे, पर बाद में जब उनकी कल्पनाएँ साकार रूप धारण करने लगीं तो उन्होंने अनुभव किया कि वे ऐसा समझने वाले स्वयं पागल थे। इस प्रकार एक संस्था-आश्रम की

स्थापना हो जाने पर रविबाबू का ध्यान उधर लगा। दूसरे ही वर्ष उन की पत्नी मृणालिनी देवी का देहान्त हो गया। रविबाबू को ज़मींदारी से जो खर्च मिलता था वह आश्रम के ही व्यय में जाता था—यहां तक कि मृणालिनी देवी के आभूषण, पुरीवाला मकान और बहुत-सी पुस्तकें भी उसके संचालन-व्यय के लिए बिक गयी।

बड़े लड़के को तो उन्होंने ऊंची शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका भेज दिया था, पर माँ के मरने पर छोटे बच्चों का लालन-पालन और देख-रेख कवि ने माँ के रूप में ही किया।

राजनीति में

इस बीच विदेशी शासन के शोषण से देश का—विशेषतः बंगाल प्रान्त का ध्यान विदेशी आन्दोलन की ओर गया। रविबाबू ने १६०४ ई० में 'स्वदेशी-समाज' की योजना बनायी। दुःख दारिद्र्य के साथ ही अपमान की ठेस से नवयुवकों का हृदय तिलमिला रहा था और उनमें क्रान्तिकारी भावनाएं जोर पकड़ रही थीं। रविबाबू के 'स्वदेशी समाज' ने ऐसे क्रान्तिकारी तत्वों को आश्रय प्रदान किया। १६०५ में कवि के पिता—महर्षि देवेन्द्रनाथ की मृत्यु हो गयी। इसी वर्ष चालबाज़ लार्ड कर्ज़न ने बंगाल के दो टुकड़े कर दिये और इस प्रकार हिन्दु-मुसलमानों को दो अप्राकृतिक क्षेत्रों में विभाजित कर लड़ा देने की नयी चाल चली गयी। इसने बढ़ते हुए असन्तोष में आहुति का काम किया।

बंगभंग के असन्तोष के कारण ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी-प्रचार का काम ज़ोरों से चलने लगा—ब्रिटिश शिक्षा संस्थाओं के जवाब में स्वदेशी (नेशनल) कालेज की स्थापना हुई और नेशनल फण्ड (राष्ट्रीय कोष) खुला और इस प्रकार अपनी स्वतंत्र रचना की जाने लगी। कवि ने 'राखी-बन्धन' की योजना तैयार की और सारे

प्रांत ने गंगा-स्नान के बाद 'अभिन्न बन्धुता' की शपथ ग्रहण की। एक विराट् सभा की गयी जिसमें कवि का यह गान अपार जन-समूह के कण्ठस्वर में गूंज उठा—

"विधिर बन्धन काटिबे तुमि एमनि शक्तिमान्" क्या तुम ऐसे शक्तिशाली हो जो प्रकृति के बन्धन को काटकर टुकड़े कर दोगे।

यह गान गाता हुआ वह विशाल समाज कलकत्ते की सड़कों पर घूमता फिरा और इस प्रकार एक बार मुर्दों में भी जान पड़ गई। इसके बाद रवि बाबू की लेखनी स्वदेशी आंदोलन में जान डालने में लग गयी। सुधार के बदले स्वदेशी सरकार ने दमन शुरू कर दिया। इससे स्वदेशी आंदोलन में प्रतिहिंसा की भावना आ गयी। युवकों ने बम और पिस्तौल का सहारा लिया।

पर कवि रवीन्द्र इन हिंसात्मक उपायों में स्वभावतः विश्वास ही न रखते थे—वह असहयोग चाहते थे; असहिष्णुता और रक्तपात नहीं। वे निर्माण में विश्वास करते थे; विध्वंस में नहीं—वे अन्याय को पशुबल के द्वारा नहीं, मानवता के द्वारा झुकाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने आतंकवाद का विरोध किया और गुप्त आंदोलन का भी। १९०८ में खुदीराम बोस ने अंग्रेज ज़िला मजिस्ट्रेट मि० केनेडी पर बम फेंका और इसी प्रकार के अनेक घात-प्रतिघात हुए जिससे ऊब कर रवि बाबू ने राजनीति से नाता तोड़ लिया।

कविवर फिर शान्ति-निकेतन में जा बैठे। इस पर अनेक लोगों ने उन्हें कायर, गद्दार आदि तक कहा; पर रविबाबू अपने विश्वास से न डिगे—उन्होंने पददलित मूक जनता को वाणी और शक्ति दी थी; पर उसका दुरुपयोग नहीं होने देना चाहते थे— वह कवि थे, ऋषि थे; पर राजनीतिज्ञ और अवसरवादी नहीं।

साहित्य-सृजन

राजनीति से पृथक् होकर रविबाबू ने केवल साहित्य-सृजन को

अपना ध्येय बनाया। संस्था-विद्यालय के कार्य से बचे समय को वह स्थायी साहित्य के निर्माण में लगाने लगे।

यूरोप-अमेरिका-भ्रमण

१९२१ मे रविबाबू ने शांति-निकेतन को सहयोगी शिक्षण पद्धति से लाभांवित कराने के लिए अनुभव प्राप्त करने यूरोप और अमेरिका की यात्रा की। इस समय तक कविवर रवीन्द्र की ख्याति यूरोप में पहुंच चुकी थी। विद्वानों ने उनका स्वागत किया। दीन-बंधु एंडरूज़, कवि ईट्स और रामेसटीन तथा पिगसन आदि ने आप के साथ विचारों का आदान-प्रदान किया।

इसी यात्रा में कविवर ने सर्वप्रथम अपना 'गीतन्जलि' नामक बंगला कविताओं का अंगरेजी अनुवाद कवि ईट्स के अनुरोध से 'इण्डियन सोसाइटी' द्वारा प्रकाशित कराया। पहले-पहल इसकी केवल ७५०प्रतियां छपी, इसके प्रकाशित होते ही सारे इग्लैंड की विद्वत्मं-डली में कवि और उनकी रचनाओं की धूम मच गयी। बड़े-बड़े कलाकार और विद्वान् कवि के दर्शनों को दौड़ पड़े। कई जगह आपके भाषण हुए।

यूरोप के बाद आप अमेरिका गये। वहां भी उनकी ख्याति हो चुकी थी। अनेक सोसाइटियों और शिक्षण संस्थाओं ने आपके भाषण कराये। कविवर सारे संसार की दृष्टि में एक उच्च अध्यात्मिक और रहस्य-वादी कवि के रूप में विख्यात हो गए।

१९१२ ई० मे कविवर पुनः स्वदेश लौट आये। इसी वर्ष उन्हें संसार का सर्व श्रेष्ठ साहित्यिक 'नोबेल' पुरस्कार प्राप्त हुआ। यह पुरस्कार स्वीडन के महान् दानी अलफ्रेड नोबेल की निधि से प्रतिवर्ष दिया जाता है और लगभग सवालाख रुपये का होता है। इससे अन्त-र्राष्ट्रीय जगत में भारत का सन्मान बहुत बढ़ गया। इसी वर्ष कलकत्ता

विश्वविद्यालय ने आपको डी० एल० (डाक्टर आफ लॉज) की उपाधि से विभूषित किया।

सार्वभौम कवि

अब रविबाबू केवल भारत के ही नहीं सारे संसार के महा कवि बनगये १९१५ में जब गाँधीजी सत्याग्रह की विजय पताका फहराते भारत लौटे तो देशबन्धु एण्डरूज की प्रेरणा से कविवर ने उन्हें तथा उनके फिनिक्स आश्रमवासियों को शान्ति-निकेतन में रहने के लिए आमंत्रित किया। गाँधी जी सदल-बल वहाँ पहुंचे और उन्होंने अपने और अपने आश्रम वासियों के सादे जीवन द्वारा शान्ति-निकेतन-वासियों पर गहरी छाप डाल दी। दोनों के सेवा-भावों में खूब सामञ्जस्य हुआ और महात्मा-जी तथा 'गुरुदेव' एक दूसरे के होगए। शान्ति-निकेतन के पाठ्यक्रम में तब से स्वावलम्बन का भी विषय जोड़ दिया गया जिसके अनुसार वहाँ के प्रत्येक छात्र को अपना कार्य अपने हाथों करना पड़ता है।

'सर' उपाधि का परित्याग

महाकवि की विश्वव्यापी ख्याति को देखकर विदेशी सरकार चौंक उठी। उसने रविबाबू को 'सर' की उपाधि से विभूषित करके अपना करके अपना बना लेना चाहा। किन्तु प्रथम यूरोपीय महायुद्ध के बाद जब भारतवासियों को रौलट ऐक्ट (काला कानून) का शिकार होना पड़ा और पंजाब में भीषण हत्याकाण्ड—जलियांवाला बाग का नरमेध हुआ तो रविबाबू ने तत्काल वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड को एक पत्र लिखकर 'सर' की उपाधि लौटा दी, जिसमें उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि "मैं कम-से-कम इतना तो कर ही सकता हूं कि भारी से भारी दुष्परिणाम भोगने के लिए तैयार होकर अपने उन करोड़ों देशवासियों की विरोध-भावना को

व्यक्त करूँ जो आतंक और भय के कारण मूक-वेदना सह रहे हैं। समय आगया है जब सम्मान के पट्टे अपमान के साथ झेल नहीं सकते। वे हमारी निर्लज्जताओं को और भी चमका देते हैं। ...अतएव विवश होकर सादर प्रार्थना करनी पड़रही है कि आप मुझे सम्राट् द्वारा प्रदत्त 'नाइट' उपाधि से मुक्त कर दें।"

पुनः विदेश-यात्रा

१९२० ई० में महाकवि भारत का सन्देश विश्व भर में फैलाने के लिए फिर विदेश गये। इंग्लैण्ड, फ्रान्स के बाद सारे यूरोप का भ्रमण कर कवि ने वहाँ अद्भुत स्वागत प्राप्त किया। जर्मनी में तो जनता ने आपका अपूर्व स्वागत किया। डेन्मार्क में आपके स्वागतार्थ राष्ट्रीय गान के साथ जुलूस निकाला गया था। स्वीडन में राजकुमारियों ने आपका शाही स्वागत किया। इस प्रकार पिपासु जगत को अध्यात्मिक ज्ञान-दान करते हुए कविवर १९२१ ई० में पुन. स्वदेश लौट आये। इसबार शान्ति-निकेतन के विद्यालय को व्यापक नाम और रूप देकर आपने 'विश्व-भारती' बना दिया। १९२४ ई० में कविवर अपने कलाकारों को ले कर बर्मा, जावा, सुमात्रा, चीन और जापान का भी भ्रमण कर आये। १९२६ ई० में निमंत्रण पाकर कविवर इटली गये। जहां मुसोलिनी ने स्वयं आपका स्वागत किया। इटली से आप स्विट्ज़रलैण्ड गये। १९२४ ई० में दक्षिण अमेरिका की स्वतंत्रता शतसम्वत्सरी में सम्मि-लित होने के लिए भी आप गये। १९२७ ई० में कवि ने सारे भारत का भ्रमण किया और १९२८ ई० में रूस की यात्रा। १९३३ ई० में ईरान के बादशाह के निमंत्रण पर आप वहाँ भी गये। सर्वत्र उनका स्वागत संसार के महान् ज्ञानदाता के रूप में हुआ।

जन्म और बाल्यकाल

बंगाल के प्रसिद्ध परिवार में ७ मई १८६१ ई० को कलकत्ता में

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम था महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर। यह परिवार सदियों से सम्पन्न एवं उच्च श्रेणी का ज़मींदार था। इसलिए शिशु रवीन्द्र का पालन-पोषण राजकीय ठाट-बाट से हुआ। बचपन में नौकरों से घिरे और रईसी के प्रतिबन्धों से बंधे होने की बातें उन्हें अच्छी नहीं लगती थीं। रवि-बाबू आरम्भ से ही स्वच्छन्द प्रकृति के थे और वे परीक्षा के लिए पढ़ने-लिखने के बन्धन को न मानकर मनमाने ढंग पर शिक्षा प्राप्त करने के आग्रही थे। यह स्वच्छन्दता विकसित होकर आगे जिस रूप में परिवर्तित हुई इसका परिचय उपर्युक्त पृष्ठों में पाठक पा चुके हैं।

: आठ :

पं० मदनमोहन मालवीय

पं० मदनमोहन मालवीय आधुनिक युग के ऋषि थे। उनका उच्च-चरित्र, सादा जीवन, सदा एक-सी वेष-भूषा, एक-सा खान-पान और नियमित जीवन-क्रम ऐसी बातें थी जो इस युग के व्यक्ति के लिए असम्भव नहीं तो कष्ट-साध्य हैं। क्या राजनीति, क्या शिक्षा-प्रचार, क्या समाज-सुधार और क्या पतितोद्धार सब के लिए मालवीयजी की लगन थी। हिन्दी-प्रचार के लिए उन्होंने जो कुछ किया वह अन्य नेताओ के लिए अनुकरणीय था।

बालक मदनमोहन का जन्म २५ दिसम्बर १८६१ ई० में प्रयाग मे हुआ था। आपकी आरम्भिक शिक्षा संस्कृत पाठशाला में हुई थी। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर आप अंग्रेजी स्कूल में भर्ती हुए। मैट्रिक परीक्षा पास कर आप म्योर सेन्ट्रल कालेज मे भर्ती हुए, वहाँ से १८८४ ई० में बी० ए० पास करने के बाद आप ने वकालत की शिक्षा भी पायी। साथ ही आप अध्यापन-कार्य भी करने लगे।

१८८६ ई० में जब कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन कलकत्ते में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ तो उसमें भाग लेने के लिए आप भी वहां पहुंचे। यहीं कालाकांकर (अवध) के राजा रामपालसिंह से आपका परिचय हुआ जिन्होंने उन दिनो 'हिन्दुस्तान' नामक एक समाचार पत्र निकाला था, जो हिन्दी का प्रथम हिन्दी दैनिक था। राजा साहब इसके लिए एक योग्य सम्पादक की खोज

में थे। मालवीयजी के विचार-स्वातंत्र्य से वे बहुत प्रभावित हुए और उन्हें अपने पत्र का सम्पादक बना दिया। उस समय मालवीयजी को इस सम्पादकीय कार्य के लिए २५०) मासिक मिलने लगे। इसके बाद मालवीयजी ने 'इण्डियन यूनियन' नामक अंग्रेजी अखबार का सम्पादन भी किया और १९०८ ई० में साप्ताहिक हिन्दी 'अभ्युदय' और उसके बाद अंग्रेजी दैनिक 'लीडर' निकाला। १९१० ई० में हिन्दी की एक मासिक पत्रिका 'मर्यादा' भी आपने प्रकाशित की।

इस प्रकार वकालत पास करके भी वकालत न करके मालवीयजी ने शिक्षा, देश-सेवा और साहित्य-सेवा का मार्ग चुना। उनके देश-हितकारी कार्यों और कठिन परिश्रम को देख कर श्रीमती एनीबीसेण्ट ने कहा था कि मालवीयजी ने अपना सांसारिक जीवन, अपनी सारी शक्ति और विलक्षण वाग्मिता—यहाँ तक कि सारा जीवन और स्वास्थ्य महान् कार्य में लगा दिया है।

प्रयाग में मालवीयजी ने हिन्दूबोर्डिंग हाउस और भारतीभवन पुस्तकालय की स्थापना की और युक्तप्रांत की अदालतों में हिन्दी का श्रीगणेश आपने ही कराया

कांग्रेस में

वैसे कांग्रेस के प्रति मालवीयजी की आरम्भ से ही लगन थी, पर सर्वप्रथम आप कांग्रेस के सभापति १९०९ में लाहौर में हुए। इस अधिवेशन में आपने तीन घण्टे तक निरन्तर मौखिक भाषण करके श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध-सा कर दिया। १९०२ ई० में युक्त-प्रांतीय सरकार ने मालवीयजी को कौंसिलका सदस्य चुना। उन दिनों युक्त-प्रांतीय कौंसिल में कुल १२ सदस्य होते थे और उन्हें भी स्वयं सरकार ही चुना करती थी। इन सदस्यों में अधिकांशतः अंग्रेज़ ही होते थे। १९१९ ई० में वे केन्द्रीय कौंसिल में भी चुन लिये गए।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मालवीयजी के कार्यों में हिन्दू विश्व-विद्यालय सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण माना जाता है। उसकी स्थापना के लिए उन्होंने १९०४ ई० से ही प्रयत्न आरम्भ कर दिये थे। अन्त में एक करोड़ रुपये एकत्र करने के पश्चात् ४ फरवरी १९१८ ई० को शुभ मुहूर्त में शास्त्रोक्त रीति से काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, जो समय पाकर अपने ढंग की एक महानतम शिक्षा संस्था बन गयी।

पूर्णतः स्वदेशी

मालवीयजी केवल भोजन-वस्त्र में स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग न कर शुद्ध स्वदेशी भावना के पक्षपाती थे। वे भारतीय रहन-सहन, हिन्दू संस्कृति और सभ्यता के अनुकूल आचरण बनाने पर जोर देते थे। देशी उद्योग-धन्धों के विकास की ओर भी मालवीयजी का ध्यान था और उन्होंने विश्व-विद्यालय में इंजीनियरिंग विभाग खुलवाया।

विशेषताएं

मालवीयजी अपने-आपको समयानुसार ढाल लेते थे। उनकी बातों में अद्भुत ओज और प्रभाव था। देश के बड़े-बड़े राजे-महाराजाओं और सेठ साहूकारों से सार्वजनिक कार्यों के लिए दान एकत्रित करने में अद्वितीय थे। उनकी इस शक्ति को जानते और मानते हुए ही महात्मा गांधी ने तिलक स्वराज्य फण्ड एकत्रित करते समय कहा था कि हम एक करोड़ रुपया अभी तक इसलिए नहीं एकत्रित कर सके कि महामना मालवीय जैसे 'भिक्षु-प्रवर' ने हमारा साथ नहीं दिया।

पचास वर्ष तक देश की अनवरत सेवा करने वाले बिरले ही भारतीय होंगे जिनकी सेवा का मान मालवीय जी की सेवा की समानता

प्राप्त कर सके। आधुनिक भारत की जागृत में जिन इने-गिने भारतीय जननायकों की गणना होती है उनमें महामना मालवीय भी हैं। उनका जीवन प्राचीन ऋषि-मुनियों की तपस्या और त्याग की याद दिलाता था। उनके जीवन में सब के लिए स्नेह, सबके लिए सेवा और सभी के लिए हित-चिन्तन का भाव था। जहाँ बहुत से पुराने नेता समय के प्रवाह में बदल गये, दल-बन्दी के चक्कर में फँसकर मुख्य ध्येय से विचलित हो उठे वहाँ मालवीयजी एक ऐसे दृढ स्तम्भ सिद्ध हुए हैं जो आदि से अन्त तक अविचलित रूप में देश-सेवा के व्रत पर दृढ बने रहे हैं। मतभेद हुआ, दल-बन्दियाँ हुईं फिर भी मालवीयजी के प्रति न तो जनता का आदर-भाव कम हुआ, न उनके साथी नेताओं का ही। उनकी सत्यनिष्ठा और देश-सेवा, उनका स्वार्थ और उच्च - चरित्र ऐसे सद्गुण थे जिनके कारण सभी उनके सम्मुख शीश झुकाते थे। स्वयं गांधीजी ने माननीय मालवीयजी के प्रति जो आदर प्रदर्शित किया है, वह किसी और भारतीय नेता को नहीं प्राप्त हो सका।

मालवीयजी की अगाध देश-भक्ति और सचाई ने ही उन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध १९३० ई० में गोलमेज परिषद् में सम्मिलित होने के लिए जाने को बाध्य किया और वे अपने साथ गंगाजल और मृत्तिका तक विलायत ले गये।

१९३० ई० में बम्बई में पुलिस ने भारतीय महिलाओं के प्रति जो दुर्व्यवहार किया उससे मालवीयजी का हृदय पसीज उठा और वे स्वास्थ्य अच्छा न होते हुए भी कानून भंग कर के गिरफ्तार हो गये। अन्त में किसी व्यक्ति के गुप्तरूप से उनका जुर्माना भर देने पर उन्हें छोड़ दिया गया। पश्चात् कांग्रेस के गौरवशाली अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार करने के लिए आते हुए वे फिर गिरफ्तार कर लिये गये।

यह सच है कि वे एक रूढ़िवादी हिन्दू और शास्त्रीय एवं लौकिक

दोनों ही परम्पराओं को मानने वाले ब्राह्मण थे, पर जहाँ देशभक्ति का प्रश्न आया वहाँ उन्होंने अपने कठोर नियम कुछ ढीले कर दिये। उन्होंने जीवन में श्रम को इतना महत्व दिया कि बीस-बीस घन्टे काम पर डटे रहा करते थे। हरिजनों के बारे में शास्त्र-मर्यादा को मानते हुए भी वह बहुत-कुछ झुक गये थे। हिन्दू-संगठन और शुद्धि के बारे में भी उनके विचार उदारतापूर्ण थे। शारीरिक उन्नति की ओर उन्होंने कभी दुर्लक्ष्य नहीं किया और अखाड़े खोलने पर बहुत जोर देते रहे।

मालवीयजी नम्रता की मूर्ति थे। वे सज्जनता की साक्षात् प्रतिमा थे। सहिष्णुता की तो उनमें चरम-सीमा विद्यमान थी। उनके व्यवहार-माधुर्य और सज्जनता की चर्चा उनके सभी प्रशंसक करते हैं। दूसरों का दृष्टिकोण समझने के लिए वह सदा प्रस्तुत रहते थे। उनकी कार्य-क्षमता प्रसिद्ध थी। जो काम दूसरे योग्य से योग्य व्यक्ति एक घंटे में करते उसे मालवीयजी पन्द्रह मिनट में समाप्त कर लेते थे।

व्यक्तित्व

मालवीयजी का व्यक्तित्व अद्‌भुत था। वे एक सच्चे ऋषि और आदर्श ब्राह्मण थे। विद्या-प्रचार और लोकहित के लिए ही उनके जीवन का एक-एक मिनट व्यतीत हुआ है। वास्तव में वे इस युग के प्राणी नहीं—सत्य-युगीय थे, पर इस युग के वातावरण में पड़कर युगधर्म का पालन भी कर लेते थे। वह पौराणिक युग के एक ऐसे महापुरुष थे जिन्हें मानो इस युग की स्थिति का अध्ययन करने के लिए भेजा गया था। मालवीयजी ने धर्म के अतिरिक्त अपना सब-कुछ देश को निछावर कर दिया। धार्मिक मामलों में वह सनातनी विचारों के समर्थक थे, पर समय आने पर उनका यह कट्टरपन घट गया। जिन मालवीयजी ने कुछ ही वर्ष पहले अपने पुत्र गोविन्द मालवीय के विलायत जाने पर उनसे प्रायश्चित्त कराया था वही उन्हें साथ लेकर विलायत गये। उनकी व्यक्ति-

गत जीवन प्रणाली ऐसी थी, जिसके कारण न केवल उन्हें ही अपने इस जीवन-क्रम पर अभिमान था प्रत्युत देश के असंख्यजन उनके भक्त थे। नेताओं से लेकर राजा-महाराजाओं और सेठ साहूकारों तथा जनसामान्य में सर्वत्र उनके श्रद्धालुओं की बहुत बड़ी संख्या थी।

मालवीयजी में सभी ब्राह्मणोचित गुणों का समावेश था। उनका जीवन-क्रम, उनका विद्याप्रेम, उनकी त्याग-तपस्या और उनकी सत्य-निष्ठा आदर्श थी। हिन्दू-शास्त्रों का उन्हें सुन्दर ज्ञान था और उनकी हिन्दू धर्म की व्याख्या अधिक व्यापक, उदार और महान् थी।

आतिथ्य-धर्म का पालन करने की भावना मालवीय जी में विशेष-रूप से थी। एक बार जब (१६०५ ई० में) काशी में सामाजिक सम्मेलन हुआ और स्वागत समिति वालों को बम्बई हाईकोर्ट के जज सर नारायण चन्द्रावरकर (प्रधानमन्त्री) को ठहराने के लिए किसी बड़े स्थान की व्यवस्था समय पर करने में बड़ी कठिनाई हुई तो मालवीयजी महाराज ने अपने वासस्थान से अपना सामान हटवा कर पेड़ के नीचे रखवा दिया और उन्हें वहाँ ठहराया गया।

मालवीयजी में कोमलता और वात्सल्य की भावना भरी हुई थी। कोई भी छोटा-बड़ा उनके इस गुण के प्रसाद से वंचित नहीं होता था। मुंशी ईश्वरशरण लिखते हैं—"जब मालवीयजी कुछ दिनों के लिए वकालत करते थे तो उनका और मेरा—दोनों ही का दफ्तर एक ही मकान में था। इसलिए मेरे क्लर्क के साथ उनका परिचय हो गया। एक बार किसी त्योहार के अवसर पर उन्होंने मुझे भोजन केलिए अपने घर आमन्त्रित किया। जब मैं उनके घर पहुँचा तो उन्होंने पूछा—"आपके क्लर्क कब तक आयंगे?" मैंने कहा—"उन्हें तो आमन्त्रित नहीं किया गया था।" इस पर मालवीयजी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने मेरे क्लर्क से क्षमा मांगी कि वह सोच कर भी उन्हें निमंत्रित क्यों न कर सके।

थोड़े में मालवीयजी की विचारधाराओं को रखना चाहें तो यह कह सकते हैं कि वे प्राचीन-काल के गुणों के पुजारी थे। वे सदा मानते थे कि हमें अपने अतीत से जो विरासत मिली हुई है वह अनमोल है। हां, काल क्रम से उस पर मैल अवश्य चढ़ गई है। उन्होंने सोचा कि हमारे इस प्राचीन गुणरूपी मणि-माणिक्य से जो मैल चढ़ गई है उसे उतारने के प्रयत्न में कहीं वह मणि ही न छूट जाय—इसीलिए वे प्राचीन आदर्शों के लिए अन्धविश्वास तक को पसन्द समझते थे। उनका विश्वास था कि समय पाकर हमारे दबे हुए सद्गुण उभरेंगे और संसार को अपनी आभा से चकित कर देंगे।

मालवीयजी की सफलता का रहस्य उनकी मानसिक और शारीरिक पवित्रता थी। उनके इसी गुण के कारण उनका [illegible] और वे सर्वत्र पूज्य बने। विदेशी और विधर्मी सरकार भी मालवीयजी का आदर करती थी। उनका व्यवहार ऐसा था कि कोई भी मुसलमान, ईसाई या परधर्मावलम्बी यह नहीं समझता था कि मालवीयजी उसके प्रति सम्मानयुक्त भाव नहीं रखते।

अन्त में अतीत के इस महान् पुरोहित, हिन्दी के प्रचारक, मानवता के पुजारी का देहावसान १२ नवम्बर १९४६ ई० को काशी में हो गया।

: नौ :

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

भारतीय राजनीति का अतिशय तेजस्वी नक्षत्र श्रीसुभाषचन्द्र बोस विलायत से सिविल सर्विस परीक्षा पास करके आने पर बृटिश सरकार की नौकरी करने के बदले सीधे राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़नेवाला अद्वितीय भारतीय नेता था। उन दिनों स्वर्गीय देशबंधु चित्तरंजनदास स्वयंसेवकों की सेना संगठित कर रहे थे। सरकार ने उसे गैर-कानूनी घोषित कर दिया था। देशबंधु की पत्नी और बहन दोनों ही खद्दर बेचने के अपराध में गिरफ्तार हो चुकी थीं। सुभाष बाबू उसी समय देशबंधु के तत्वावधान में राजनीतिक कार्य-क्षेत्र में उतरे।

स्वयंसेवकों की भर्ती के पहले सुभाष बाबू देशबंधु के आदेशानुसार राष्ट्रीय विद्यालय के कुलपति का काम करने लगे थे। पर स्वयंसेवक दल भर्ती करके देशबंधु ने जो राष्ट्रीय सेना तैयार की उसके लिए उपयुक्त सेनापति की आवश्यकता थी। इस काम के लिए उन्हें सुभाष से योग्य और कोई व्यक्ति नहीं मिला। इसलिए उन्हें ही सेनानायक चुना गया।

बृटिश सरकार ने जब यह देखा कि उसका स्तम्भ बनने वाला सुभाष अब विरोधी पक्ष—राष्ट्रीय सेना का नायकत्व सँभाल रहा है तो वह आगबबूला हो गयी और उसने देशबंधु और सुभाष दोनों को गिरफ्तार करके अलीपुर जेल में बंद कर दिया। देशबंधु चित्तरंजन

द्वारा उस वर्ष (१९२१ ई०) में अहमदाबाद कांग्रेस के सभापति चुने गये थे, इसलिए सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर कांग्रेस पर प्रबल कुठाराघात किया। इसके बाद कांग्रेस का सभापति-पद देशबन्धु ने ही ग्रहण किया। १९२२ ई० में उन्होंने 'फारवर्ड' नामक अंगरेजी दैनिक पत्र प्रकाशित किया जिसके सम्पादन का भार सुभाष बाबू पर ही पड़ा।

स्वराज्य पार्टी बनाकर कौंसिल प्रवेश का कार्यक्रम अपनाने के साथ ही देशबन्धु ने कलकत्ता कार्पोरेशन के चुनाव में भी अपने उम्मीदवार खड़े किये जिसमें ७५ में ५४ सीटों पर स्वराज्य दल का कब्जा हो गया। सुभाष बाबू कार्पोरेशन के एक्जीक्यूटिव अफसर बनाये गये। कार्पोरेशन का काम सुभाष बाबू ने इतनी योग्यता से चलाया कि उनका विरोध करने वाली सरकार ने भी स्वीकार किया कि सफाई और शिक्षा-प्रसार में इस अवधि में कार्पोरेशन ने काफी प्रगति की है। उनके द्वारा २५,००० के बदले १,१६,००० विद्यार्थियों को शिक्षा मिलने लगी।

इस बीच श्री डेको नामक यूरोपियन अफसर की हत्या एक नव-युवक बंगाली द्वारा कर दी गई जिस पर बंगाल आर्डिनेन्स नामक कानून निकालकर बंगाल के चुने हुए ८० नवयुवकों को गिरफ्तार कर लिया गया। इन नवयुवकों में सुभाष बाबू एक थे। उनको गिरफ्तार कर पहले तो अलीपुर सेण्ट्रल जेल से बहरामपुर जेल भेजा गया और उसके बाद माण्डले जेल, जहां लोकमान्य तिलक और पंजाब केसरी लाला लाजपतराय रखे जा चुके थे। इस प्रकार अपराध सिद्ध किये बिना ही उन्हें अनिश्चित काल के लिए जेल में बन्द रखा गया। जेल में सुभाष बाबू का वजन ४० पौंड घट गया। सुभाष बाबू ने अपने साथियों सहित भूख-हड़ताल शुरू कर दी जिससे सारे देश में क्षोभ छा गया। अन्त में नेताओं के अनुरोध पर उन्होंने १२ दिन बाद अनशन भंग किया। फिर भी उनका स्वास्थ्य गिरता ही गया। इसलिए बंगाल सरकार ने उन्हें बिना शर्त छोड़ दिया।

स्वास्थ्य कुछ सुधरते ही सुभाष बाबू ने देश का तूफानी दौरा करना और भाषण देना शुरू कर दिया। पटना और बम्बई में आपने क्रान्तिकारी भाषण करने के बाद ३ मई (१९२८ ई०) को महाराष्ट्र प्रान्तीय परिषद् में ऐसा ओजपूर्ण भाषण किया कि जिसे सुनकर नवयुवकों में नये उत्साह की लहर दौड़ गयी। उसी वर्ष विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार जोरों से चल पड़ा।

सेनापति के रूप में

इसके बाद कलकत्ते में स्व० पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। यह अधिवेशनऐसा शानदार हुआ जैसा इसके पूर्व और पश्चात् कभी नहीं हुआ। जिस प्रकार पं० मोतीलाल नेहरू का व्यक्तित्व राजसीय ढंगका था वैसे ही सुभाष बाबूका गौरवयुक्त स्वरूप था।

स्टेशन पर पं० मोतीलाल नेहरू को १०१ तोपों की सलामी दी गई और ३६ सफेद घोड़ों की बग्घी में उनका जुलूस निकाला गया। २०० वर्दीधारी स्वयंसेवक और २०८ साइकिल सवार एवं ५० घुड़सवार एक-से वस्त्र पहने जुलूस के आगे-आगे थे और इस विशाल स्वयंसेवक सेना के सेनापति थे हमारे चरित-नायक, जो एक खास घोड़े पर प्रधान सेनापत्ति की वर्दी पहने हुए विशाल सेना का नियंत्रण कर रहे थे। ऐसा स्वागत आज तक दिल्ली सम्राट् को भी नहीं मिला। इसी अवसर पर पं० मोतीलाल नेहरू ने कहा था कि सुभाष मुझे अपने बेटे के समान प्यारा है।

फिर गिरफ्तार

अगस्त १९२९ ई० में राजबन्दी दिवस मनाया गया। इसमें सुभाष बाबू ने अनथक परिश्रम करके खूब काम किया। सुभाष बाबू साथियों सहित गिरफ्तार कर लिये गये। जेल में जब पठान कैदियों द्वारा बम-

केस के अभियुक्तों को सरकार ने पिटवाया तो सुभाष बाबू ने इसका विरोध किया। परिणाम यह हुआ कि सुभाष और अन्य नेताओं पर मार पड़ी। सुभाष बाबू इस मार से तीन घण्टे तक बेहोश रहे।

इसके बाद जब सुभाष बाबू जेल से छूटे तो काम में जुट गये। वे बहरामपुर जा रहे थे कि रास्ते में फिर १४४ का नोटिस मिला। आज्ञा भङ्ग करने के अपराध में वे फिर गिरफ्तार हुए पर इसमें केवल सात दिन की सजा आपको दी गई।

इसके बाद २६ जनवरी को सारे देश में स्वाधीनता दिवस मनाया गया। सुभाष बाबू ने कलकत्ते के मैदान वाले मानूमेन्ट (मीनार) पर राष्ट्रीय झण्डा फहराने का निश्चय किया। उस वर्ष सुभाष बाबू कलकत्ता कार्पोरेशन के मेयर-पद से अलग हो गये थे। जनता की भारी भीड़ और नारियों के राष्ट्रीय-गान, शंख-ध्वनि के बीच मालाओं से लदे वीर शिरोमणि सुभाष आगे बढ़ रहे थे कि इसी समय पुलिस-सार्जेंटों और सिपाहियों ने जनता पर लाठी-प्रहार आरम्भ किया। सुभाष बाबू पर भी राक्षसी प्रहार हुआ। फिर वीर स्वयंसेवकों ने आगे बढ़कर लाठियों की मार अपने सिर पर सही। ४० व्यक्ति घायल होकर धराशायी हो गये। सुभाष बाबू वहीं गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें ६ महीने के लिए फिर जेल में वास करना पड़ा।

राजनीतिक-बन्दी सम्मेलन

१९३१ ई० में कराची में राजनीतिक-बन्दी सम्मेलन के सभापति-पद से सुभाष बाबू ने बड़ा जोशीला भाषण दिया। इसी वर्ष सुभाष बाबू ढाका जिले में होने वाले पुलिस के अत्याचारों की गैर-सरकारी तौर पर जांच करा रहे थे। सरकार ने तेजगांव में इन्हें गिरफ्तार कर लिया।

सुभाष बाबू विद्यार्थी-समाज के नेता बन गये और इनके इशारे

पर नवयुवक प्राण निछावर करने को तैयार हो गये। कराची में नौजवान भारत सभा का अधिवेशन आपकी ही अध्यक्षता में हुआ। युक्त-प्रांतीय नौजवान भारत सभा का अधिवेशन भी उन दिनों (१६३१ ई० में) मथुरा में सुभाष बाबू की अध्यक्षता में हुआ। महाराष्ट्र नौजवान सभा का सभापति पद आपने स्वीकार किया और वहां धुआंधार भाषण दिया।

उसी वर्ष बंगाल के तीसरे रेगुलेशन के अन्तर्गत आपको फिर गिरफ्तार किया गया। आप अनिश्चित् कालके लिए नजरबंद कर दिये गये। इससे वे बीमार पड़गये और उन्हें ज्वर आने लगा तथा फेफड़े में खराबी आगयी। इस पर उन्हें भुवाली भेज दिया गया; पर वहां भी स्वास्थ्य में कोई सुधार न होने के कारण आप लखनऊ लाये गये। यहां छाती में दर्द भी होने लगा। ४० पौण्ड वजन घट गया। इस पर डाक्टर ने उन्हें स्विट्ज़रलैंड भेजने की सलाह दी।

२३ फरवरी १६३६ ई० को सुभाष बाबू को बम्बई से एक जहाज़ पर स्विट्ज़रलैंड के लिए रवाना कर दिया गया। वहां सुभाष के सगे-सम्बन्धियों तक से उन्हें नहीं मिलने दिया गया। केवल शरत् बाबू मिल सके। जहाज पर चढ़ने के बाद पुलिस ने उन्हें सूचित किया कि अब आप पर से प्रतिबन्ध हटा लिया गया है।

युरोप में

सुभाष बाबू ने युरोप पहुँच कर भी अपनी धुन जारी रखी। रोम में उन्होंने एशियाई विद्यार्थियों के सम्मेलन का उद्‌घाटन किया। आप पोलैण्ड भी गये। जेनेवा से आप फ्रान्स के नाइस-नामक समुद्र तट पर पहुँचे। वहां आपका स्वास्थ्य कुछ सुधरा। कार्ल्सबाद (जेकोस्लोवेकिया) के सुरम्य पहाड़ी स्थान पर भी, जो झरनों के लिए प्रसिद्ध है—आप जल-चिकित्सा कराने गए। वहां से वे फ्रेनजेन्सबाद गये जहाँ एसेम्बली

के स्पीकर श्री विट्ठलभाई पटेल चिकित्सा करा रहे थे। २६ सितम्बर १९३३ को आपने जेनेवा की तीसरी अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् में भारतीय प्रतिनिधि के रूप मे भाग लिया। इसके बाद आप वियाना (आस्ट्रिया) गये।

यूरोप में भारत के सम्बन्ध में आप और भी प्रचार-कार्य करना चाहते थे, पर जब उन्हें अपने पिताजी की बीमारी का तार मिला तो किसी भी बात की पर्वा न कर पासपोर्ट के बगैर ही भारत उड़ आये, पर कुछ विलम्ब हो जाने के कारण अपने पिताजी के दर्शन न कर सके।

४ मार्च १९३४ ई० को ज्यों ही सुभाष बाबू बम्बई जहाज से उतरे, सरकार उन्हें मोटर पर बिठा कर ले गयी और उन पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि वे अपने मकान से बाहर न निकलें और परिवार वालों के अतिरिक्त और किसी से बात-चीत न करें, न किसी को पत्र लिखें। अपनी डाक भी वे एक [illegible] को दिखा दिया करें। यह भी कहा गया कि इन आज्ञाओं को भंग करने पर उन्हें सात वर्ष की कैद की सजा भोगनी पड़ेगी।

फिर यूरोप को

१९३६ ई० में सुभाष बाबू फिर यूरोप गये और वहाँ आयर्लैंड के राष्ट्रपति डी-वेलेरा से डबलिन जाकर मिले। इस पर अंग्रेज़ी सरकार ने अपने चुने हुए गुप्तचर सुभाष बाबू के पीछे लगा दिये।

८ अप्रैल १९३६ को सुभाष बाबू स्वदेश लौटे। पर बम्बई में जहाज़ से उतरते ही पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और किसी से मिलने जुलने तक न दिया।

फिर बीमार

एक बार स्वदेश लौटते ही उनकी बीमारी अधिक वेग से उभर

आयी। सरकार ने उन्हें शरत् बाबू के कुर्सियांग वाले बंगले में नज़रबन्द कर दिया। १७ मास बाद वे बिना शर्त मुक्त किये गये। इस बीच देश और विदेश में उनकी नज़रबन्दी के विरुद्ध प्रबल-आन्दोलन हुआ था। मुक्त होने पर भी उनका स्वास्थ्य न सुधरा तो वे डलहौज़ी (पंजाब) में रहने लगे। वहां भी स्वास्थ्य सुधरते न देख वह फिर युरोप गये। इस बार सर्वत्र इनका प्रेम-पूर्ण स्वागत सभी देशों की भारतीय और आम-भारतीय जनता ने किया।

राष्ट्रपति

१९३८ ई० में त्रिपुरी कांग्रेस का अध्यक्ष सुभाष बाबू को ही चुना गया। इसके बाद १९३९ ई० में भी जनता ने सुभाष बाबू की सेवाओं पर मुग्ध हो इन्हें ही राष्ट्रपति चुना यद्यपि महात्मा गाँधी तक की यह इच्छा थी कि इसबार राष्ट्रपति-पद के लिए डा० पट्टाभी चुने जायं। सुभाष बाबू की सेवाओं और प्रभाव के आगे डा० पट्टाभी की हार हो गयी और महात्मा गांधी तक को स्वीकार करना पड़ा कि सुभाष के मुकाबला में "पट्टाभी की हार मेरी हार है।" त्रिपुरी कांग्रेस में सुभाष बाबू इतने बीमार थे कि उन्हें स्ट्रेचर (रुग्ण-खाट) पर पण्डाल में लाया गया था। त्रिपुरा कांग्रेस के वाम और दक्षिण पन्थियों में मतभेद बढ़ने लगा। वाम पक्ष सुभाष बाबू के नेतृत्व में तत्काल संघर्ष छेड़ने के पक्ष में था। महात्माजी ने सुभाष बाबू को बहुत मनाया और पुचकारा; फिर भी उन्होंने कांग्रेस से इस्तीफा दे ही दिया और 'अग्रगामी' दल की सृष्टि की, जो सरकार से समझौता करने का विरोधी था।

युद्ध का आरम्भ

इस बीच यूरोप में उस विश्वव्यापी महासमर का आरम्भ होगया जिसकी भविष्यवाणी सुभाषबाबू ने पहले से कर रखी थी। बृटिश

सरकार ने हिन्दुस्तान को उसकी इच्छा के विरुद्ध युद्ध में घसीट लिया। इस बीच रामगढ़ कांग्रेस हो गयी। सुभाषबाबू ने इसमें भाग न ले एक समझौता विरोधी-सम्मेलन कर डाला। महात्मा गांधी और कांग्रेस हाई-कमांड के लोगों को सुभाष बाबू की यह कार्रवाई और उनकी उग्रता नहीं रुची।

पिंजड़े के बाहर

सुभाष बाबू अब और प्रतीक्षा कर कांग्रेस के अधिकारियों की तरह समय नहीं गुजारना चाहते थे। उन्होंने मोर्चा छेड़ दिया। उन्होंने "हालवेल-स्मारक' (ब्लैकहोल) के हटाने के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया। नौकरशाही ने उन्हें फौरन जेल में बन्द कर दिया। जेल-जीवन में ही सुभाष बाबू ने सोचा—युद्ध के इस अवसर पर भी आजादी न पा सका तो सदियों गुलाम रहेगा। निदान उन्होंने अपने आमरण अनशन के संकल्प की सूचना बंगाल सरकार को दे दी। सरकार ऐसे क्रांतिकारी नेता की मृत्यु की जिम्मेदारी लेने से डरती थी। उन्हें सरकार ने अर्द्ध रुग्णावस्था में जेल से छोड़ दिया।

जेल से छूटने के बाद रोग-शय्या पर लेटे सुभाष बाबू ने आजादी के इस अवसर का सदुपयोग करने की ठान ली। सरकार इन्हें मुक्त करके भी उनके बारे में निश्चिन्त न थी। उनके एल्गिन रोड स्थित बंगले के चारों ओर पहरेदार गुप्त और प्रकट रूप में उनकी गति-विधि पर ध्यान रखते थे।

किन्तु इन सबकी आँखों में धूल झोंककर सुभाष बाबू किस प्रकार न केवल अपने घर और कलकत्ता से वरन् हिन्दुस्तान से बाहर निकल गये, इसका अनुमान करके भी चकित होना पड़ता है।

नेताजी

जो हो, हिन्दुस्तान से निकल कर काबुल के रास्ते वे किस प्रकार

बर्लिन पहुंचे और वहाँ ब्रिटेन-विरोधी जर्मन अधिकारियों ने उन्हें सब प्रकार की सुविधाएँ देकर आज़ाद हिन्द फौज स्थापित करने में मदद दी' यह एक लम्बी कहानी है, जिसे पढ़कर नेताजी के रहस्यपूर्ण और तेजस्वी व्यक्तित्व पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। हिटलर और मुसोलिनी से मिलकर यूरोप में आजाद हिन्द फौज का मोर्चा दृढ़ कर-के सुभाष बाबू, जो अब "नेताजी" के विशेषण से सारे संसार के प्रवासी हिन्दुस्तानियों में विख्यात् हो चुके थे, जापान पहुंचे और जापान सरकार के द्वारा दक्षिण पूर्वी एशिया में भारत को अंग्रेजों से स्वतंत्र करने के लिए प्रबल सैनिक संगठन "आजाद हिन्द फौज" के नाम से किया और "चलो दिल्ली" का नारा बुलन्द करके पूर्वी हिन्दुस्तान पर हमला कर दिया। इधर भारत के जो सैनिक जपान के साथ युद्ध में बन्दी बन गये थे वे सब "आजाद हिन्द फौज" में भर्ती हो गये और "आजाद हिन्द सरकार" का अपना सेक्रेटेरियेट संस्थापित हो गया। बर्मा और मलाया में नेताजी के नेतृत्व में इस आजाद हिन्द सरकार ने भारत को स्वतंत्र कराने का पूरा प्रयत्न किया। उसके प्रचारविभाग—विशेषकर रेडियो-प्रचार ने कमाल का काम किया। इस बीच रासबिहारी बोस ने जापान से स्याम आकर बैंकाक में भारतीयों का एक महा-सम्मेलन कर डाला। केवल छः सात महीनों के प्रयत्न से नेताजी ने यह चमत्कार कर दिखाया जो इतिहास में अद्वितीय कहा जायगा। उन्होंने "झांसी की रानी रेजीमेण्ट" के नाम से कैप्टेन लक्ष्मीबाई की देख-रेख में भारतीय स्त्रियों तक की सेना तैयार कर ली। आजाद हिन्द बैंक की भी स्थापना हो गयी।

आजाद हिन्द फौज में साम्प्रदायिकता का नाम नहीं था। "जयहिन्द" का नारा नेताजी की प्रेरणा से उसी ने प्रचलित किया और भारत पर हमला कर उसे अंग्रेजों के पंजे से मुक्त करने के लिए उस सेना ने इम्फाल (मणिपुर) तक मार्च किया। भयानक वर्षा और रसद और सामान का अभाव हो जाने पर भी यह सेना हिम्मत नहीं

हारी और वह पीछे पाँव रखने को तैयार नहीं थी। जापानियों के पीछे पांव हटा लेने और आगे बढ़ी हुई सैनिक पंक्ति तक सामान न पहुँच सकने के कारण नेताजी के आदेश से यह सेना पीछे हटी। २३ अप्रैल को जापानियों ने और २४ को सुभाष बाबू ने रंगून छोड़ दिया।

अंत में युद्ध बन्द हो जाने पर "आज़ाद हिन्द फौज" के प्रमुख गिरफ्तार अफसरों—मि० शाहनवाज, क० ढिल्लन और कैप्टन सहगल आदि पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया गया कि इन्होंने ब्रिटिश फौज में रहकर भी उसके विरुद्ध संघर्ष किया। पर अन्त में भूलाभाई देसाई की वकालत से उन्हें मुक्त कर दिया गया।

सुभाष बाबू के सम्बन्ध में जापानी रेडियो के आधार पर यह समाचार प्रसारित हुआ है कि वे एक वायुयान दुर्घटना के शिकार हो स्वर्गवासी हो गये। किन्तु भारतीय जनता के जीवन में वे अभी तक जीवित हैं और सदा रहेंगे।

आरम्भिक जीवन

सुभाष बाबू का जन्म बंगाल के प्रसिद्ध कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पूर्वज चौबीस परगना जिले के कोडालिया गाँव में रहते थे। आपके पिता स्वर्गीय जानकीनाथ बोस बहादुर पहले इसी गाँव में ही रहते थे। वे एक प्रसिद्ध वकील थे। पीछे वे कटक म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन भी हो गये थे और सरकार ने उन्हें "राय बहादुर" की उपाधि से विभूषित किया था।

सुभाष बाबू का जन्म २३ जनवरी १८९७ को कटक में हुआ था। पढ़ने लिखने में वे बहुत तेज थे और उनमें बचपन से ही धार्मिक-भावना बहुत थी। १९१३ ई० में आपने मैट्रिक पास किया और कालेज की पढ़ाई समाप्त कर इंग्लैंड गये। १९१९ ई० में वे सिविल सर्विस की परीक्षा में सफल होकर स्वदेश लौटे।

किन्तु सिविल सर्विस के बदले उन्होंने अपना जीवन किस प्रकार भारतीय जनता की सेवा में लगाया, इसका वर्णन आप ऊपर पढ़ चुके हैं।

सुभाष जैसा वीर पाकर भारत माता धन्य हो गयी।

: दस :

महामानव गांधी

यद्यपि गांधीजी का पार्थिव शरीर अब इस संसार में नहीं रहा, पर इन पंक्तियों के लेखक को अनेक बार उनका दर्शन निकट से करने और बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, इस लिए उनके भौतिक स्वरूप का वर्णन करना काल्पनिक न कहा जायगा। कृशकाय, गेहुँआँ रंग, लम्बी नाक, झुके कान, खिचड़ी मूँछें, पीछे की ओर उठी हुई खोपड़ी, पैनी दृष्टि और मोटे होंठ। इस साधारण आवरण के पीछे न जाने कौन-सी आध्यात्मिक शक्ति छिपी थी जो गांधीजी के सामान्य कलेवर को असाधारण बनाती थी। मुखमुद्रा शान्ति और सुस्थिरता की प्रतीक, पर हाथ-पाँव चंचल, चलने में बच्चों को भी मात कर देने वाले और बात-चीत करने में कभी न थकने वाले। सहस्रों वर्ष से भारत ने, नहीं-नहीं संसार ने ऐसी दिव्य-विभूति के दर्शन नहीं किये थे, जिसने संसार की क्लिष्टतम समस्या को सहजतम ढंग से हल किया हो। सदा प्रसन्न, कर्त्तव्य-परायण और विचारशील रहकर मानवीय चोले में स्थित देवपुरुष ने संसार को एक ऐसे पथ का निदर्शन कराया जिसके लिए सारा संसार सदा उसका ऋणी रहेगा।

बुद्ध के बाद भारत ने कोई ऐसी विभूति नहीं पैदा की थी जिस की आध्यात्मिक शक्ति की छाप सारे संसार पर पड़ी हो और जिसने भारत का नाम अन्तर्राष्ट्रीय जगत में प्रख्यात कर दिया हो। गांधी जी ने भारत के विगत गौरव और लुप्त विभूति को पुनः प्रकाश में लाने और

उसका नाम एक बार फिर विश्व के इतिहास में चमकाने के लिए अवतीर्ण हुआ था। सदियों के शोषण और विदेशी एवं विधर्मी प्रभुत्व ने इस देश की जो दुर्दशा कर दी थी उसकी क्षतिपूर्ति के लिए भारत में एक ही ऐसा महामानव आविर्भूत हो गया जिसने इस सुपुप्त जाति को जागृत कर दिया, उसे फिर जीवन-दान दिया, दासता से इसका उद्धार कर इसे फिर उन्नत मस्तक हो कर चलना सिखाया और उसे पारस्परिक एकता का पाठ पढाते-पढ़ाते दुर्बुद्धि का शिकार हो गया।

इस महान् विभूति ने भारतवासियों को ही नहीं, मानव-जाति को सत्याग्रह का वह दिव्य अस्त्र प्रदान किया है जिस के द्वारा न केवल भारत ने अपनी खोई हुई स्वाधीनता प्राप्त कर ली है, प्रत्युत जिसके द्वारा सारे संसार को अत्याचार, शोषण और दबाव से मुक्ति मिल सकती है। संसार ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेगा त्यों-त्यों इस अस्त्र की दिव्यता का अनुभव करेगा। विज्ञान मनुष्य को बहुत आगे बढाकर संसार को सुलभ साधनों से संयुक्त अवश्य कर देगा, पर वह उसकी अध्यात्मिक उलझनों और संघर्षों को न दूर कर सकेगा—उसे दूर करने के लिए तो सत्याग्रह-जैसे विमल और अमोघ अस्त्र की ही आवश्यकता होगी। और इसके लिए संसार को भारत के इस महान् गुरु के प्रति सदा ऋणी और कृतज्ञ होना पड़ेगा, जिससे विकल विश्व को एक ऐसी संजीवनी बूटी मिल गयी है जो कभी असफल न होगी और जिसके द्वारा संघर्ष-पीड़ित और मूर्छित-मानवता पुनः नवजीवन प्राप्त किया करेगी।

इस महामानव ने किस प्रकार संसार में यह उच्चतम स्थान प्राप्त किया इसका पूरा विवरण तो उसकी जीवनी आगे पढकर ही मालूम हो सकेगा, पर उसके जीवन का मूलमंत्र था सत्य और अहिंसा और इसके आधार पर ही उसने अपने लोकोत्तर प्रयोगों द्वारा सारे विश्व को चमत्कृत कर दिया।

वंश और जन्म

गाँधीजी के पूर्वज काठियावाडी वैश्य थे। उनके दादा काठिया-

वाड के राज्यों में दीवान का काम करते थे। वे पहले पोरबन्दर में दीवान थे, पर बाद में जूनागढ़ राज्य में आकर बस गये थे। उनके दो स्त्रियाँ थीं—पहली से चार और दूसरी से दो पुत्र पैदा हुए। इन छहों पुत्रों में से क्रम के हिसाब से पाँचवे करमचन्द थे जो पोरबन्दर के दीवान रहे थे। (पोरबन्दर का दूसरा नाम सुदामापुरी भी है।) यही हमारे चरित-नायक के पूज्य पिताजी थे।

करमचन्द ने क्रमशः चार शादियाँ कीं। पहली स्त्री से दो कन्याएँ हुईं और चौथी पत्नी—पुतलीबाई के एक लड़की और तीन लड़के हुए जिनमें सबसे छोटे का नाम मोहनदास हुआ। इनका जन्म आश्विन कृष्ण १२, सं० १९२५ वि० अर्थात् २ अक्तूबर १८६९ ई० को हुआ।

मोहनदास के पिता करमचन्द अपने कुटुम्बियों के प्रेमी, सत्य और न्याय के अनुरागी, साहसी और उदार थे। वे राज्य का सारा काम-काज ईमानदारी और लगन के साथ करते थे और बड़े व्यवहारदक्ष तथा अनुभवी भी थे।

और माता पुतलीबाई बड़ी ही साधु-प्रकृति की और धर्मशील स्त्री थीं। वे पूजा पाठ किये बिना अन्नजल नहीं ग्रहण करती थीं और प्रतिदिन मन्दिर जाया करती थीं।

बालक मोहनदास का बचपन पोरबन्दर में बीता। प्रारम्भिक शिक्षा—पट्टी-पहाड़ा आदि की शुरुआत पोरबन्दर में ही हो गयी थी। पोरबन्दर से जब उनके पिता राजकोट गये तो बालक मोहनदास की अवस्था सात वर्ष से अधिक नहीं थी। वहाँ राजकोट की प्रारम्भिक पाठशाला में उनका नाम लिखाया गया और वहीं से मास्टर-मिडिल और हाई स्कूलों की शिक्षा भी आपने प्राप्त की। हाई स्कूल में भर्ती होने के समय उनकी उम्र बारह साल की थी।

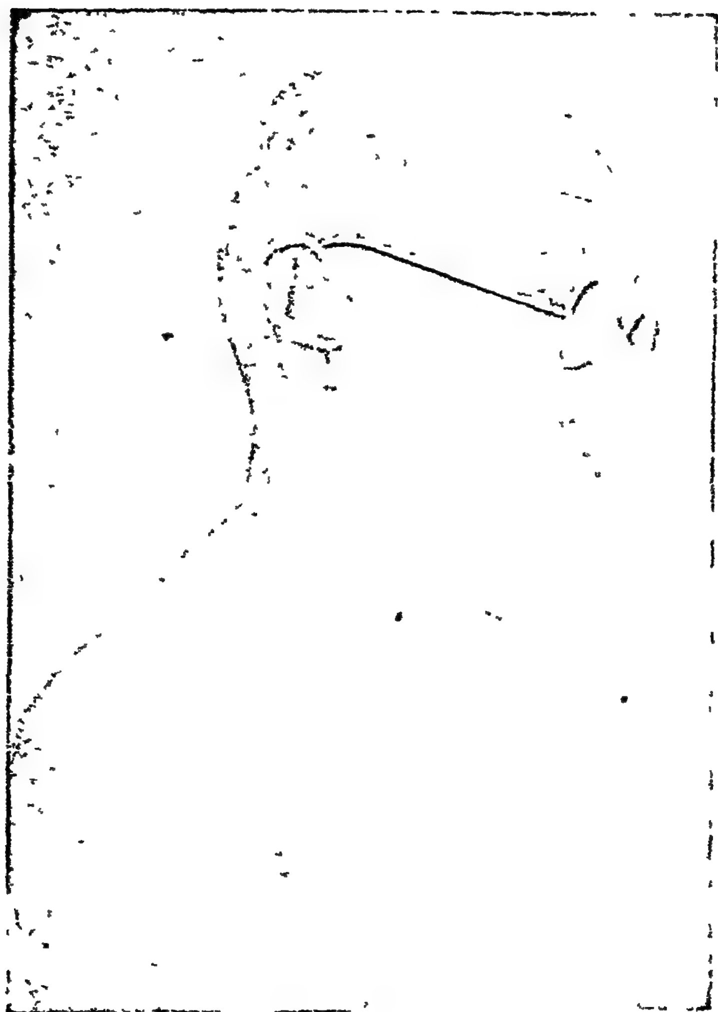
बचपन से गाँधीजी में सचाई और ईमानदारी के प्रति लगन थी। वे लज्जाशील स्वभाव के थे, इसलिए स्कूल और घर के अतिरिक्त और

कुछ नहीं जानते थे। किसी बाहरी आदमी से बातचीत करना और पढ़ाई के अलावा और काम करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। किन्तु इनका बचपन बड़े विशुद्ध वातावरण में बीता। स्कूल के दिनों में 'श्रवण कुमार' का पितृभक्ति-पूर्ण नाटक देखने और 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक का उपाख्यान पढ़ने और अभिनय देखने का उनके हृदय पर गहरा असर पड़ा। वे बार-बार अपने मन में यही सवाल करते कि हरिश्चन्द्र के समान सत्यवादी क्यों नहीं होते। आगे चल कर इन दोनों कथानकों ने उनके जीवन पर कितना प्रभाव डाला इसका परिचय पाठकों को आगे मिलेगा।

सिर्फ तेरह वर्ष की उम्र में उनका विवाह हो गया। उनकी पत्नी का नाम कस्तूरबा था। वह पढ़ी लिखी नहीं थीं पर स्वभाव की सरल, स्वाधीन और दृढ़-संकल्प वाली थीं। इसलिए उन्होंने अपने को नये परिवार के अनुकूल बना लिया। बाद में उन्होंने गुजराती भाषा लिख-पढ़ लेने का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लिया।

गाँधीजी विवाह के समय हाईस्कूल में भर्ती हो चुके थे। वे पढ़ने-लिखने में अच्छे थे और शिक्षकगण उन्हें प्रेम करते थे। उन्हें छात्रवृत्ति भी मिलने लगी थी और पारितोषिक भी मिलते थे। अपनी गलती का अनुभव गाँधीजी जब कभी करते तो दुःख से उनकी आँखें भर आती थीं। खेल-कूद इन्हें पसन्द न था। हाँ, टहलने का अभ्यास उन्होंने अवश्य कर लिया था। स्कूल से लौटते ही वह अपने पिताजी की सेवा में लग जाते थे।

विद्यार्थी जीवन में एक दिन गाँधीजी एक मित्र के चक्कर में आ गये और उन्होंने उनके साथ एक गुप्त जगह में जाकर गोश्त और पावरोटी खाली। खा तो ली; पर उसके बाद गाँधीजी इतने दुःखी हुए कि उस दिन रात मुश्किल से काटी। वह स्वप्न देखने लगे—मानो जीता-जागता बकरा उनके पेट में बड़ी ही दर्दनाक आवाज में मिमिया रहा



महात्मा गांधी

है। वे डरकर सोते से उठ बैठे। उन्हें अपनी करनी पर बड़ा पछतावा हुआ और अपने-आपके प्रति उन्हें बड़ी घृणा हो गयी। इसी प्रकार बीड़ी पीने की बुरी आदत डाल कर वह बड़े दुःखी हुए, क्योंकि उसके लिए उन्होंने एक बार एक नौकर के पैसे चुरा लिये थे। बाद में अपनी भूल का अनुभव कर लेने पर उन्होंने आत्महत्या तक करने का निश्चय किया, आत्महत्या तो नहीं कर सके पर बीड़ी पीने की आदत उन्होंने छोड़ दी। इसी प्रकार अपने एक मित्र को २५) के कर्ज से छुड़ाने के लिए उन्होंने अपने भाई के हाथ के कड़े (आभूषण) का सोना बेच दिया। पर इस घटना से उन्हें इतना दुःख हुआ कि उन्होंने एक पत्र द्वारा अपने पिता से अपराध स्वीकार कर लिया। पिता ने बेटे का अपराध अपने स्वभाव के विरुद्ध क्षमा कर दिया। इस घटना का भी गाँधीजी पर गहरा असर पड़ा।

गाँधीजी अभी सोलह वर्ष के ही थे कि उनके पिता बीमार पड़ गये। इनकी दवादारू और सेवा-शुश्रूषा के अतिरिक्त पैर दबाने का काम भी गाँधीजी ही किया करते थे। किन्तु इस बीमारी से इनके पिता बच न सके।

बचपन से ही उनके घरकी रम्भा दासी इन्हें कहा करती कि भूत-प्रेत आदि के भय से बचने के लिए राम का नाम रटना चाहिए। इसलिए गाँधी जी राम-नाम के बड़े प्रेमी हो गये।

शिक्षा और प्रवास

गाँधी ने १८८७ ई० में मैट्रिक परीक्षा पास की। घर के लोग इन्हें कालेज में पढ़ने के लिए भावनगर ले गये पर कालेज की पढ़ाई में इनका मन न लगा। अंत में अपने परिवार के पुराने सलाहकार मा-वजी दवे की राय से गाँधीजी विलायत जाकर बैरिस्टरी पास कर आने को तैयार हो गये। इनकी माँ को बेटे का विलायत जाना

लगा, क्योंकि विदेश में लम्बा प्रवास करके बालक न जाने कैसा बन जाय, यह भय उनके मन में था। लोगों ने उन्हें बताया कि विलायत में कोई बिना मांसाहार किये और शराब पिये रह ही नहीं सकता। इसलिए वे बहुत घबरायीं। पर पुत्र ने माता को समझाया कि वह अपने बेटे पर विश्वास करे—वह कभी शराब न पियेगा, न मांस खायेगा। विलायती मेमों के चक्कर में न फँसने की भी गाँधीजी ने शपथ ली। तब कहीं जाकर उन्हें विलायत जाने की आज्ञा मिली।

पर जिस मोढ वैश्य परिवार में गाँधीजी का जन्म हुआ था उसका कोई भी व्यक्ति तब तक विलायत नहीं गया था, इसलिए समाज-त्याग का भय भी उनके परिवार वालों को दिखाया गया। पर गाँधीजी समाज के निर्णय से विचलित होने वाले नहीं थे। ४ सितम्बर १८८८ ई० में को वे विलायत के लिए रवाना हो गये।

लन्दन पहुचकर वहां के एंग्लो इण्डियन परिवार में खर्च-वर्च अदा करने वाले मेहमान के रूप में रहने लगे। घर की मालिकन ने गांधीजी के लिए निरामिष भोजन बनाने का भार अपने ऊपर ले लिया। लन्दन नगर के शाकाहारी भोजनालय में भी वे कभी-कभी भोजन करते रहे। कुछ दिनों तक अच्छे-अच्छे कपडे पहनने और बेला बजाने का शौक भी उन्हें लगा, पर खर्च बढने के डर से वे उधर अधिक संलग्न नहीं हुए और एक सात्विक भारतीय विद्यार्थी का जीवन व्यतीत करने लगे। पन्द्रह पौण्ड मासिक की जगह केवल ४—५ पौण्ड में ही किफायत के साथ काम चलाने लगे। अपना भोजन भी खुद बनाने लगे, केवल एक वक्त बाहर भोजन करते थे। अंग्रेजी भाषा में पूरी दक्षता न होने और लज्जाशीलता के कारण वे लन्दन में कभी भाषण नहीं कर सके। कभी अवसर भी आया तो अपना भाषण दूसरे से पढा दिया। विलायत से लौटते समय एक होटल में उन्होंने निरामिष-भोजी मित्रों को, जो दावत दी, उसमें वह केवल इतना ही कह सके—"महाशयो, आप लोगों ने मेरा निमंत्रण स्वीकार किया, इसके लिए धन्यवाद!"

जीवन-क्षेत्र में

वैरिस्टरी पास करके गांधीजी जब हिन्दुस्तान लौटे तो घरवालों को आशा हुई कि अब वे बैरिस्टरी करके परिवार-पालन करेंगे। बिरादरी के लोगों में दो दल हो गये। एक ने गांधीजी का बहिष्कार कर दिया और दूसरे ने उन्हें अपने पक्ष में मिला लिया। जिन्होंने गांधीजी को जाति में मिलाया उन्हें प्रसन्न करने के लिए गांधीजी ने नासिक जाकर विलायत-यात्रा का प्रायश्चित गंगा स्नान करके लिया। इसके बाद उन्हें राजकोट में भोजन करने के लिए आमंत्रित करके बिरादरी वालों ने उनके साथ खाया-पिया। यह सब गांधीजी ने अपने बड़े भाई के आदेश से और उन्हीं की प्रसन्नता के लिए किया।

हाईकोर्ट की जानकारी प्राप्त करने के लिए गांधीजी कुछ दिन के लिए बम्बई भी रहे, पर वहां छोटी अदालत में भी वकालत करने में उन्हें सफलता नहीं मिली, क्योंकि उनमें मामूली वकीलों जैसे की असली योग्यता नहीं आती थी और न वह मुकदमेबाजों के दलालों को दलाली आदि देने के पक्ष में थे। लाचार उन्होंने शिक्षक का काम करने का विचार किया, पर ग्रेजुएट (बी० ए० पास) न होने से उसका वह काम भी न पा सके। बम्बई का खर्च और काम का अभाव—आगे चले तो फंसे।

इस बीच पोरबन्दर के एक व्यापारी का पत्र गांधीजी के बड़े भाई के पास आया कि हमें अपने दक्षिण अफ्रीका के [illegible] मुकदमे के लिए, जो ४० हजार पौंड का था, एक ऐसे [illegible] की जरूरत है जो हमारे मामले [illegible] वकील-बैरिस्टरों को अच्छी तरह समझा सके। [illegible] एक साल की नौकरी थी, पर अपनी प्रकृति के अनुकूल होने से [illegible] को यह काम अच्छा लगा। काम एक साल के लिए था और एक नया देश देखने का चाव भी गांधीजी को था। इसलिए उन्होंने [illegible]

में कुछ तय किये बिना ही उस व्यापारी—शेख अब्दुल्ला का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अप्रैल १८९३ ई० को ये दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हो गये।

सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग

नेटाल (दक्षिण-अफ्रीका) पहुँचकर गांधीजी ने देखा कि वहां हिन्दुस्तानियों का घोर अपमान हो रहा है। जब वे अपने व्यापारी मलिक शेखअब्दुल्ला के-साथ वहां की अदालत में गये तो न्यायाधीश ने इनकी ओर देखकर सबसे पहले पगड़ी उतार लेने का आदेश किया। गांधीजी ऐसा न करके अदालत से उठकर चले आये।

दक्षिण अफ्रीका में जो हिन्दुस्तानी शर्त-बन्दी कुली-प्रथा के अनुसार गये थे उनके साथ गोरों का व्यवहार अत्यन्त लज्जाजनक और बेइज्जती का था। गोरे सभी हिन्दुस्तानियों को कुली कहते थे और गाँधीजी का नाम वहां "कुली बैरिस्टर" पड़ गया। हिन्दुस्तानी व्यापारियों को वहां कुली व्यापारी कहा जाता था।

"कुली बैरिस्टर" की पगडी का प्रसंग दक्षिण-अफ्रीका के अखबारों में छपा और इस प्रकार बिना खर्च और परिश्रम के गाँधीजी वहां प्रसिद्ध हो गये।

इसी प्रकार नेटाल से प्रिटोरिया जाते समय गाँधीजी ने पहले दर्जे का टिकट लिया, पर रेल वालों ने इन्हें "काला आदमी" कहकर मेरीत्सबर्ग में ही रेल से उतार कर दूसरे (काले आदमियों के) डिब्बे में बैठने को कहा। पर गाँधीजी उसमें न बैठे और अपने साथ किये गये दुर्व्यवहार की शिकायत रेलवे के ट्रैफिक मैनेजर को तार द्वारा भेजी, पर फल कुछ न हुआ। इसी प्रकार का दुर्व्यवहार-गांधीजी के साथ घोड़ा-गाड़ी वाले ने पावदान पर न बैठने के कारण किया और इन्हें बुरी तरह पीटा।

प्रिटोरिया पहुंचकर गांधीजी ने देखा कि वहां तो हिन्दुस्तानियों की हालत नेटाल से भी अधिक खराब है। यहां हिन्दुस्तानियों को ३ पौंड प्रवेश-कर देना पड़ता था और वे फुटपाथ [illegible] से वंचित थे। एक दिन गांधीजी को सिपाही ने धक्का मार कर नीचे गिरा दिया कि वह कुली होकर फुटपाथ पर चल रहे हैं।

इस प्रकार प्रवासी-भारतवासियों के दुःखों का अनुभव कर गांधीजी ने हिन्दुस्तानियों के प्रति किये जाने वाले अत्याचार का विरोध कर उद्धार करने का प्रथम विचार प्रिटोरिया में ही किया।

जिस मुकदमे के सिलसिले में गांधीजी प्रिटोरिया गये थे उसका निपटारा उन्होंने आपस में ही पंचायती तरीके से करा दिया, क्योंकि वह मामला हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी के ही बीच चल रहा था। यह काम करके आप डरबन (नेटाल) लौट आये। दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान लौटने का अवसर आने पर भी वे इसलिए वापस नहीं आये कि इन दिनों वहां हिन्दुस्तानियों के राजनैतिक अधिकारों पर भी कुठाराघात होने की तैयारी हो रही थी। गांधीजी वहीं रह गये और उन्होंने "नेटाल इण्डियन कांग्रेस" की स्थापना करके हिन्दुस्तानियों के हकों के लिए आन्दोलन करने का श्रीगणेश किया।

एक संस्था स्थापित हो जाने पर हिन्दुस्तानियों के लिए वाद-विवाद और विचार-विनिमय और प्रचार का साधन मिल गया। इस प्रकार तीन वर्ष दक्षिण अफ्रीका में रहकर गांधीजी कुछ दिनों के लिए स्वदेश लौटे और यहां देश भर में घूमकर दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी-भारतवासियों की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने इस समस्या पर एक पुस्तक लिखकर भारत में प्रवासियों के प्रति सहानुभूति जगाई। सर फिरोजशाह मेहता, जस्टिस रानडे, गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, डाक्टर भण्डारकर और सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से मिलकर आपने प्रवासियों की दुःख-गाथा सुनाई और सभाएं करवाईं। इस-

समैन' और 'इंगलिशमैन' के सम्पादकों से भी इस समस्या पर लेख प्रकाशित करने के लिए मिले। मद्रास में डा० सुब्रह्मण्यम् की अध्यक्षता में एक महती सभा की।

इस बीच दक्षिण अफ्रीका प्रवासी प्रमुख कार्यकर्ताओं ने गांधीजी को तार देकर फिर बुलाया। गांधीजी अपनी धर्म-पत्नी और दो लड़कों को लेकर दूसरी बार दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हो गये।

गांधीजी का जहाज़ जब डरबन पहुंचा तो गोरों ने बड़ा उपद्रव किया और उन्होंने उस जहाज़ पर से मुसाफिरों को उतरने न देने के लिए गडबड करनी शुरू करदी। जब गांधीपरिवार किसी तरह जहाज़ से उतारा गया तो रास्ते में गोरों ने उन्हें पहचान लिया। लगे उनपर ईंटें, पत्थर, लात-घूंसे, सड़े अण्डे और जूते बरसाने। पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने बडी कठिनाई से उन्हे बचाया।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका पहुंचकर फिर जन-सेवा का काम अपने हाथ में ले लिया। पर अब गांधीजी अधिक ब्रह्मचर्य, संयम और आत्म-संशोधन की योजना बनाकर काम करने लगे। बच्चों को पढायी-लिखायी की ओर भी आपने ध्यान दिया।

उन्हीं दिनों दक्षिण अफ्रीका में बोअर युद्ध शुरू हुआ और उसके बाद ज़ुलू-विद्रोह भी। इन दोनों में ही गांधीजी ने हिन्दुस्तानियों का दल संगठित कर नेटाल-सरकार की सेवा भी की।

राजनीतिक गुरु

बोअर युद्ध के बाद गांधी फिर स्वदेश लौटे। इस बार स्व० गोपालकृष्ण गोखले से मिलकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके साथ गांधीजी कुछ दिन कलकत्ते में रहे थे। स्व० गोखले को गांधीजी अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। इसके बाद गांधीजी बम्बई में आकर बस गये। पर इस बार भी दक्षिण अफ्रीका से बुलावा आया। ब्रिटेन

के औपनिवेशिक सचिव दक्षिण अफ्रीका आ रहे थे, इसलिए उनके पास भारतीय शिष्टमण्डल ले जाने के लिए गांधीजी को सभी दक्षिण अफ्रीका प्रवासी कहते थे। गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका गये और चेम्बर-लेन से मिले भी; पर उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इन्हीं दिनों 'इण्डियन ओपीनियन' नामक पत्र भी निकाला गया जिसमें गांधीजी बराबर लेख लिखने लगे। हिन्दुस्तानी बस्ती में ताऊन की बीमारी फैल जाने पर गांधीजी ने अथक परिश्रम करके सेवा-कार्य किया।

इसी बीच गांधीजी ने फिनिक्स में एक आदर्श संस्था कायम की जिसमें खेती और अपने लिए प्रत्येक कार्य अपने हाथ से किया जाता था। श्रीपोलक नामक सज्जन इन दिनों गांधीजी के अधिक निकट आगये और फिनिक्स से ही 'इण्डियन ओपीनियन' का प्रकाशन भी होने लगा। सत्याग्रह की क्रियात्मक उत्पत्ति फिनिक्स की इस संस्था से ही हुई जिसका नाम "सत्याग्रह आश्रम" हुआ।

उधर भारतीयों के प्रति और भी अपमान जनक व्यवहार होने लगा था। इसलिए गांधीजी को सत्याग्रह के लिए तैयार भूमि मिल गयी। एक नये कानून के अनुसार हिन्दुस्तानियों को थाने में जाकर रिपोर्ट करने और अंगूठे के निशान लगाने की कैद लगायी गयी जो घोर अपराधियों के प्रति ही लग सकती है। इसके विरुद्ध गांधीजी ने सत्याग्रह शुरू कर दिया और उसमें उन्हें दो मास की सजा भी हो गयी। उधर आरेंज फ्री स्टेट में हिन्दुस्तानियों का प्रवेश वर्जित करार दे दिया गया जिससे हजारों प्रवासी भारतवासियों ने सत्याग्रह किया; जेल गये और अनेक प्रकार के कष्ट भोगे। अन्त में १९१६ ई० में गांधी-स्मट्स समझौता हो गया।

१९१४ ई० में सत्याग्रह-संग्राम समाप्त होने पर गांधीजी गोखले की इच्छा से विलायत होकर हिन्दुस्तान लौटने के विचार से रवाना हुए, पर वे इंग्लैंड पहुचे ही थे कि यूरोपीय महायुद्ध छिड़ गया जिसने गांधी-

जी ने घायलों की सेवा-सुश्रूषा में समय लगाने का निश्चय किया। किन्तु इस बीच उनकी तबीयत खराब हो गई, इसलिए स्वदेश लौटने को बाध्य होना पड़ा।

साबरमती सत्याग्रह आश्रम

इस बार स्वदेश लौटने पर गांधीजी ने निश्चय किया कि वे गुजरात में कहीं सत्याग्रह आश्रम खोलेंगे जिसमें फिनिक्स (दक्षिण-अफ्रीका के आश्रम) का और भी सुन्दर और विकसित रूप हिन्दुस्तान में बनाया जा सके। वहां खोले गये टाल्सटाय फार्म की भी योजना इस आश्रम में रखी गयी और अपने हाथों पाखाना तक साफ कर लेने का स्वावलम्बन-का पाठ सिखाया जाने लगा। इस प्रकार अहमदाबाद में साबरमती नदी के तट पर सत्याग्रह आश्रम नामक उस संस्था की स्थापना हुई जिसने बाद में सारे भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया।

गांधीजी ने कुली-प्रथा बन्द करने के लिए सारे देश में आन्दोलन करके सरकार को चुनौती दी कि अगर अमुक तारीख तक यह प्रथा न बन्द की गयी तो सत्याग्रह शुरूकर दिया जायगा। अन्ततः सरकार ने यह प्रथा बन्द कर दी।

उधर उत्तर बिहार (चम्पारन) में नील की खेती करने वाले गोरों ने किसानों आदि मजदूरों पर अमानुषिक अत्याचार करने शुरू कर दिये थे। गांधीजी ने उनकी दुःख-गाथा सुनी तो उसकी जांच करने बिहार जा पहुंचे। गांधीजी ने हिन्दुस्तान में सबसे पहले चम्पारन में ही सत्याग्रह-अस्त्र का प्रयोग किया। उनके नेतृत्व में बाबू राजेन्द्रप्रसाद सारे बिहार को तैयार करके सत्याग्रह में लग गए। जेलें भर गयीं और सरकार के अत्याचर के विरुद्ध घोर असन्तोष फैल गया। अन्त में सरकार को इस अस्त्र के सामने झुकना पड़ा और निलहों को बिहार से सदा के लिए कूच करना पड़ा।

गांधीजी को गुजरात के खेडा-जिले का पाटीदार-आन्दोलन भी संचालित करना पडा ।

रौलेट ऐक्ट और असहयोग

इस बीच (१९१८ ई० में) युरोप का महायुद्ध समाप्त हो गया। पर बृटिश सरकार ने युद्ध में की गई हिन्दुस्तानियो की सेवाओं का बदला रौलेट-ऐक्ट पास करके दिया। इस पर सारा देश क्षुब्ध हो उठा। ६ अप्रैल १९१९ को सारे देश में व्यापक हडताल हुई। पंजाब में फौजी कानून घोषित हो गया। अमृतसर के जलियांवाला बाग में फौज ने अन्धाधुन्ध गोलियां चलाकर भीषण नर-मेध किया। सारा देश दहल उठा। अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें गांधीजी ने भी भाग लिया। खिलाफत आन्दोलन पर भी गांधीजी का प्रभाव पडा। इस प्रकार १९२० ई० में गांधीजी के नेतृत्व में शुरु हुआ आन्दोलन १९२१ ई० में सारे देश में छा गया। इस आन्दोलन में लगभग ३७,००० सत्याग्रहियों को सजाएं हुई ।

पर १९२२ ई० के फरवरी महीने में युक्त-प्रान्त के चौरी चौरा (जिला गोरखपुर) में ग्रामीण भीड इतनी उत्तेजित हो उठी कि उसने लगभग आधे दर्जन पुलिस वालो को जिन्दा जला दिया। ऐसी अवस्था में गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया, क्योंकि उनके सिद्धान्तानुसार केवल अहिंसक रहकर ही सत्याग्रह किया जा सकता था। कुछ ही हफ्ते बाद गांधीजी को गिरफ्तार कर उन्हें लम्बी कैद की सजा दे दी गई।

१९२४ ई० के शुरु में गांधीजी जेल में बहुत बीमार हो गये। इसलिए उन्हें अस्पताल भेज दिया गया। वहां उनका आपरेशन हुआ। धीरे-धीरे गांधीजी स्वस्थ हो गये, पर उनकी शेष सजा रद्द की जा चुकी थी, इसलिए छोड दिये गये। १९२४ ई० में देश में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिसमें गांधीजी ने दिल्ली में २१ दिन का अन-

शन किया ; उन्हीं दिनों दिल्ली में एकता-सम्मेलन भी हुआ पर समझौता न हो सका।

इसके बाद गांधीजी ने कुछ समय तक राजनीति से हाथ खींचकर रचनात्मक कार्यों—खादी प्रचार आदि में लगाया और सारे देश का भ्रमण किया।

१९२७–२८ ई० में भारतीय राजनीति में फिर कुछ हलचल शुरू हुई। १९२८ ई० में कलकत्ता कांग्रेस ने महात्माजी के आदेशानुसार बृटिश सरकार को एक वर्ष का समय दिया कि यदि इसके अन्दर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य न मिला तो वह पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर देगी।

फिर सत्याग्रह

१९२९ ई० में लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की। १९३० ई० में अप्रैल महीने में महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में फिर सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ। महात्माजी ने सत्याग्रह शुरू करने के पहले वायसराय को अपनी ग्यारह शर्तें भेजीं जिनके पूरा करने पर सत्याग्रह न शुरू किया जाता। पर वायसराय शर्त मानने वाले कब थे। महात्माजी ने नमक-कानून तोड़ने की घोषणा कर दी और थोड़े चुने हुए स्वयंसेवकों को साथ ले डाण्डी-यात्रा पर निकल पड़े। इस प्रकार व्यापक आन्दोलन और सनसनी फैल चुकने के बाद अन्त में गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये। यह सत्याग्रह १९२१ ई० के असहयोग आन्दोलन की अपेक्षा बहुत अधिक जोरदार और व्यापक था। इसमें लाखों सत्याग्रही जेल गये और बृटिश सरकार की जड़ एक बार तो उखड़ गई-सी प्रतीत हुई; पर अन्त में चतुर बृटिश राजनीतिज्ञों ने स्थिति संभाल ली। गांधी-इरविन समझौता हो गया और गोल-मेज परिषद् में सम्मिलित होने के लिए गांधीजी विलायत गये। किन्तु इस

परिषद् ने कांग्रेस की मांग पूरी नहीं की। जनवरी १९३२ ई० में गांधीजी विलायत से लौट आये ; पर स्थिति गम्भीर होती देख उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया।

हरिजन-आन्दोलन

१९३२ ई० ही में श्रीमैकडानेल्ड ने एक घोर साम्प्रदायिक बंटवारा कर हरिजनों को हिन्दुओं से पृथक् करने की चाल चली। परन्तु गांधीजी ने उनकी वह चाल सफल नहीं होने दी और हिन्दू-समाज को अंग-भंग होने से बचा लिया। उन्होंने जेल में इस बटवारे के विरुद्ध अनशन शुरू कर दिया जिससे सारे देश में हाहाकार मच गया। अन्त में वृटिश सरकार झुकी और उसने एक समझौता कर लिया।

१९३२–३३ ई० में गांधीजी ने हरिजन-आन्दोलन बड़े वेग से चलाया जिससे सवर्ण हिन्दुओं की उनके साथ भेद-भाव करने की पूरी भर्त्सना की गई। इस आन्दोलन के फल-स्वरूप देश में बड़े-बड़े मन्दिर हरिजनों के दर्शनार्थ खोल दिये गये।

१९३५ और उसके बाद

१९३५ ई० का प्रान्तीय विधान जारी होने पर कांग्रेस ने गांधीजी के आदेशानुसार मन्त्रिपद ग्रहण कर लिया। गांधीजी ने फिर भी अपने ग्रामोद्योग विकास का रचनात्मक कार्यक्रम जारी रखा। गांधी-सेवा-संघ की स्थापना द्वारा देश का रचनात्मक कार्यक्रम आगे बढ़ाया गया। १९३९ ई० में दूसरे विश्वव्यापी महायुद्ध का प्रारम्भ हो जाने पर चूंकि वृटिश सरकार ने भारत के नेताओं, लोकमत तथा व्यवस्थापिका सभा की राय न लेकर हिन्दुस्तान को स्वेच्छा से युद्ध में घसीट लिया इसलिए प्रांतों के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफे दे दिये। गांधीजी ने वृटिश सरकार से स्पष्ट कहा कि वह अपने युद्धोद्देश्य को

घोषणा करे अन्यथा भारत एक तीसरे और अन्तिम आन्दोलन का श्रीगणेश करेगा। वाइसराय से भी गांधीजी की मुलाकातें हुईं, पर बृटेन ने अपना रुख स्पष्ट नहीं किया।

१९४२ की क्रांति

इस पर सारा देश महात्माजी के नेतृत्व में प्रबल आन्दोलन के लिए तैयार हो गया। इस बीच बृटिश सरकार ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भेज कर समझौते की चौथी चेष्टा की, पर वह सफल न हुई। ८ अगस्त १९४२ को बम्बई में महात्माजी ने अंग्रेजों को 'भारत छोड़ो' और हिन्दुस्तानियों को 'करो या मरो' का उपदेश दिया जिसके फलस्वरूप उन्हें तथा उनके साथी नेताओं—कांग्रेस कार्यकारिणी को पहले गिरफ्तार कर अज्ञात-स्थान (अहमदनगर के किले) को भेज दिया गया।

इस पर सारा देश विक्षुब्ध हो उठा—जगह-जगह तार काट दिये, रेल की पटरियां उखाड़ दी गयीं, पुल तोड़ दिये गये और संयुक्त-प्रांत के बलिया, बम्बई के सातारा, मध्यप्रान्त के चिमूर और आष्टी तथा बंगाल के मिदनापुर में वह काण्ड हुए जो इतिहास में चिर स्मरणीय रहेंगे। नेतृत्वहीन होने पर भी देश ने जिस प्रकार क्रान्ति का यह आन्दोलन चलाया उसे देखने वाले विदेशी प्रेक्षकों तक ने हिन्दुस्तानियों की प्रशंसा की, पर बृटिश सरकार जल्दी टस-से मस होने वाली नहीं थी। इस बार के आन्दोलन में लोगों ने लुक-छिप कर भी अवश्य काम किया। पर विदेशी सरकार इस आन्दोलन से पागलों का-सा आचरण करने लगी। नित्य नये काले कानून बनते, पुलिस और फौजों के द्वारा गांव के गांव लूटे जाते। सारे देश में आन्दोलन की व्यापकता के साथ दमन और उत्पीडन द्वारा भीषण संकट-पूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी। आये दिन निरीहों पर सामूहिक सैनिक आक्रमण, पुलिस के अत्याचार,

होते। गांव-के-गांव जलाये और लूटे जाते, अनेक स्थानो (खासकर चिमूर और आष्ठी में) स्त्रियों पर वह घोर लज्जाजनक बलात्कार हुआ जिसके लिए कोई भी सरकार लज्जित हो सकती थी। केवल गोली-कांडो से पन्द्रह हजार व्यक्तियो की हत्याएं हुई। फिर भी जनता विचलित नहीं हुई—छात्रों और स्त्रियो ने भी विदेशी सरकार का डटकर मुकाबला किया। प्रबल दमन से भी जनता दबी नहीं। जो हिन्दुस्तानी पठाखे की आवाज से डर जाते थे वे गोलियो के चलने पर भी नही भागते थे। इस शौर्य-प्रवृत्ति का श्रेय एक महात्मा गांधी को ही दिया जाता है क्योकि उनका आन्दोलन शुरू होने के पहले इस देश की जनता ऐसी निष्प्राण हो चुकी थी कि इसके उद्धार का कोई मार्ग नहीं दीखता था।

इस बीच श्रीसुभाषचंद्र बोस अवसर पाकर भारत से बाहर निकल गये और उन्होंने अपने विश्वास के अनुसार विदेशों में बृटिश सरकार के विरुद्ध न केवल तूफानी आन्दोलन किया वरन् आज़ाद हिंद फौज की स्थापना कर उसके द्वारा भारत को स्वतंत्र कराने के लिए पूर्व दिशा से आक्रमण आरम्भ करा दिया।

फिर अनशन

उधर जेल में गांधीजी ने १० फरवरी १६४३ ई० ने तीन सप्ताह का अनशन शुरू कर दिया और इस बार उनके बचने की कोई आशा न रही—नाडी छूट जाने तक भी सरकार ने उन्हे नहीं छोडा। जेल में ही गांधीजी के मंत्री महादेव देसाई और पत्नी कस्तूरबा का देहान्त हो गया। जेल से छूटने के बाद गांधीजी ने जो वक्तव्य दिया उससे बृटिश सरकार के नैतिक बल को बहुत बडा धक्का लगा। कांग्रेस के अन्य नेता भी छूटे जिनमें पं० जवाहरलाल नेहरू ने बयालीस के आन्दोलन के लिए जनता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इससे लोगों में फिर उत्साह फैला। अब वृटिश सरकार लड़ाई की परेशानी और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के कारण ऐसी क्षीण हो चुकी थी कि भारतीय लोकमत की उपेक्षा और नहीं कर सकती थी। उसने राजनीतिक खिंच दूर करने के लिए उपाय ढूंढने शुरू कर दिये।

१९४६ ई० के शुरू में प्रांतीय एसेम्बलियों के नये चुनाव हुए। इस निर्वाचन में काँग्रेस ने भी भाग लिया और कठिनाइयों के होते हुए भी उसकी ज़बरदस्त विजय हुई। फलतः युक्तप्राँत, विहार, उड़ीसा, मध्यप्राँत, वम्बई, मद्रास, आसाम और सीमाप्रांत में कांग्रेसी मंत्री-मंडल बन गये। पंजाब में कांग्रेस-मंत्रिमण्डल तो न बन सका पर सम्मिलित दलों का मंत्रिमण्डल अवश्य बन गया।

मंत्री-मण्डल मिशन

अन्त में लोकमत की विजय देख वृटिश सरकार का आसन डोला और उसने लार्ड पेथिक लारेन्स की अध्यक्षता में हिन्दुस्तान की राज-नीतिक खिंच दूर करने के लिए वृटिश मंत्रिमण्डल हिन्दुस्तान भेजा। लम्बी बातचीत, परामर्श और गवेषणा के बाद १६ मई (१९४६ ई०) को यह घोषणा की गई जिसके आधार पर कांग्रेसी नेता राष्ट्रीय सरकार बनाने और विधान-परिषद् में शामिल होने को तैयार हो गये। इस निर्णय के अनुसार सितम्बर (१९४६) के प्रथम सप्ताह में पं० जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में अन्तरिम सरकार बनाली गई। यद्यपि यह सरकार १९३५ ई० के विधानानुसार ही बनी थी और इसके हाथ खुले नहीं थे, फिर भी उसने काम करना शुरू कर दिया। चूंकि इस मंत्रि-मण्डल में पहले मुस्लिम लीग सम्मिलित नहीं हुई थी इस लिए वायसराय ने बृटेन का हित दृष्टि में रखते हुए लीग को भी मना कर इसमें सम्मिलित हो जाने पर राजी कर लिया। इसके बाद कलकत्ते और नोआखली में सांप्रदायिक दंगे हुए। विहार में भी उसकी प्रति-

क्रिया हुई तो गांधीजी ने आमरण अनशन करने का निश्चय घोषित कर दिया। इस पर बिहार में शांति स्थापित हो गई।

विभाजन

किंतु मुस्लिम लीगी नेता पंजाब और बंगाल को विभाजित कर पाकिस्तान की अलग हुकूमत कायम करने पर डटे थे और उनके अगुआ श्री जिन्ना ने बृटिश अधिकारियों के साथ कुटिल अभिसंधि करके अंत में देश के दो टुकड़े करा ही दिये। गांधीजी पहले इस विभाजन के प्रबल विरोधी थे, पर सभी नेताओं के परामर्श से और बृटेन से आजादी लेने का और कोई उपाय न देख कर उन्होंने भी इसकी स्वीकृति दे दी।

किन्तु इस विभाजन का वही भयंकर परिणाम हुआ जो होना था। जुलाई १९४७ से लाहौर में अव्यवस्था फैल गयी और लीग के अनुयायियों ने अल्पसंख्यकों पर वह जुल्म ढाया जिसका उदाहरण इतिहास की बर्बरताओं में ढूंढने पर भी न मिलेगा। १५ अगस्त (१९४७) को हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर दिये गये जिनमें पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल, सिन्ध या सीमाप्रान्त (मत-संग्रह द्वारा) पाकिस्तान के अंग बने।

इस विभाजन की तैयारी से वातावरण कटु साम्प्रदायिक भावना से ऐसा दूषित हो गया कि मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में हिन्दुओं का और हिन्दू प्रधान इलाकों में मुसलमानों का जीवन दूभर हो गया। गांधीजी इस साम्प्रदायिक विष को शान्त करने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे थे, जिससे कट्टरपन्थी हिन्दू उनके इन प्रयत्नों से नाराज रहते थे। महात्माजी की नोआखाली की सेवाओं से पंजाब के लीगी मुस्लिमों के कारनामों का बदला लेने की इच्छा रखनेवाले कट्टरपन्थी हिन्दू मन-ही मन जल रहे थे। कलकत्ते से साम्प्रदायिकता के विष को दूर करने

के लिए महात्माजी ने जलती आग पर जल छोड़ा और दिल्ली लौटकर उन्होंने साम्प्रदायिक वातावरण शुद्ध करने के लिए अनशन करने की घोषणा की, क्योंकि उनका विश्वास था कि इसके सिवा कोई और उपाय शेष नहीं था। उनका अनशन शुरू होते ही हलचल मच गयी और सभी सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों ने उन्हें आश्वासन दिया कि दिल्ली में मुसलमान पहले की तरह स्वतन्त्रता के साथ रह सकेंगे और उनकी जिन मस्जिदों पर कब्जा कर लिया गया है वे लौटा दी जायँगी। इस पर १८ जनवरी को उन्होंने अनशन तोड़ दिया। इससे वातावरण कुछ हद तक सुधरा भी पर इससे प्रतिक्रियावादियों में असन्तोष फैल गया। उपवास तोड़ने के दो ही दिन बाद प्रार्थना सभा के निकट बम फेंककर उन्हें मारने की चेष्टा की गयी; पर वह उन्हें नहीं लगा। पर इस घटना से भी गांधीजी की रक्षा के लिए पर्याप्त व्यवस्था इसलिए नहीं की गयी कि प्रार्थना-सभा में वे कोई प्रतिबन्ध लगाना नहीं चाहते थे। अंततः ३० जनवरी की शाम को सवा पाँच बजे नाथूराम गोंडसे नामक एक शिक्षित महाराष्ट्र ब्राह्मण ने रिवाल्वर चलाकर महात्माजी के भौतिक शरीर को समाप्त कर दिया। गोली लगने के बाद केवल 'राम' नाम उच्चारण कर सके।

महात्माजी के इस प्रकार के मरण का अर्थ चाहे कोई कुछ भी लगाये पर वास्तव में वह इस प्रकार मरकर अमर हो गये हैं और जब तक पृथ्वी पर मनुष्य जाति का वास रहेगा, उनका नाम याद कर-करके लोग शान्ति और सुख प्राप्त करते रहेंगे।

: ग्यारह :

सर जगदीशचन्द्र बोस

पराधीन भारत का मस्तक ऊँचा करने के लिए जिन महामहिम प्रतिभाशाली पुरुषों ने विलक्षण कार्य कर दिखाये हैं उनमें जगद्विख्यात् वैज्ञानिक डा० सर जगदीशचंद्र बोस भी एक हैं। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने सचराचर जीवों की व्याख्या में वृक्षों तक में जीव होनेकी जो बात सहस्रों वर्ष पूर्व कही थी और जिसे अंग्रेज-युग के नामधारी शिक्षित हँसी में उड़ाया करते थे उसे सर जगदीशचंद्र बोस ने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया। सर जगदीश के इस आविष्कार से क्या वैज्ञानिक और क्या सर्वसाधारण—सभी ऐसे चमत्कृत हुए कि आरम्भ में किसी को यह विश्वास नहीं हुआ; पर जब सर जगदीश ने अपने विविध प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया कि वृक्षों में सुख-दुःख अनुभव करने और उन्हें प्रकाशित करने की शक्ति है, तो उन्होंने दाँतों तले उँगली दबा ली और बूढ़े भारत के इस विचक्षण प्रतिभावान् महान् वैज्ञानिक को नमस्कार करने लगे। इस काल में महात्मा गांधी को, जो ख्याति राजनीतिक जगत् में और महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर को जो प्रसिद्धि साहित्य-जगत् में मिली, वही, बल्कि उससे भी अधिक, नाम सर जगदीशचंद्र बोस को वैज्ञानिक जगत् में मिला। सर जगदीश बोस की इस अभिनव वैज्ञानिक क्रान्ति का विज्ञान-जगत् पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि भारत संसार के सभ्य देशों में परिगणनीय हो गया। इसके पहले भारत के किसी भी वैज्ञानिक को अन्तर्रा-

ष्ट्रीय ख्याति नहीं प्राप्त हुई थी। इस प्रकार वैज्ञानिक-जगत में अपनी सूक्ष्मतम प्रतिभा प्रदर्शित करके भारत ने दिखा दिया कि वह केवल अध्यात्मिक जगत में ही नहीं वैज्ञानिक जगत में भी अपनी गति दिखा-कर जीर्णतम भारतीय संस्कृति में आधुनिकता के किसलय विकसित कर सकता है।

बाल्यकाल और शिक्षा

संसार के बहुतेरे महान् पुरुषों की तरह सर जगदीश का जन्म भी पूर्वी बंगाल के एक गांव में हुआ था जो ढाका जिले के विक्रमपुर कस्बे के निकट है और जिसका नाम राढ़ीरपाल है। इनके पिता का नाम था बाबू भगवान्चन्द्र बसु (बोस), जो फरीदपुर जिले के डिप्टी कलेक्टर थे। बालक जगदीश का जन्म ३० नवम्बर १८५८ ई० को हुआ।

बाबू भगवान्चन्द्र बड़े दृढ़, चरित्रवान् और निर्भीक एवं स्वतंत्र स्वभाव के पुरुष थे। उन्हें उद्योग-धन्धों से विशेष प्रेम था। उन्होंने उद्योग-धन्धों और कला-कौशल के कई स्कूल भी खोले थे। उनके इस कार्य से बालक जगदीश की वैज्ञानिक मनोवृत्ति को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। सर जगदीश ने स्वयं लिखा है—"पिताजी के कला-कौशल सम्बन्धी कार्यों से मुझे जो प्रेरणा मिली उसी के बलपर में आगे चल कर आविष्कार करने में सफल हुआ। भारतीय कारीगरों के विश्वकर्मा पूजा के ढंग और स्वयं विश्वकर्मा की मूर्ति को देखकर मेरे हृदय पर और भी अधिक प्रभाव पड़ा था।"

विद्वान् बाप ने होनहार बेटे के लक्षण देख लिये और उसकी प्रवृत्ति को अधिकाधिक परिपुष्ट बनाने का प्रयत्न करते रहे।

बालक जगदीश की शिक्षा और संस्कार का समुचित ध्यान रखा गया और उनका भावी जीवन उज्ज्वल एवं यशस्वी बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया। यद्यपि उन दिनों में आधुनिक शिक्षा-पद्धति का

विकास नहीं हुआ था और वह केवल शैशव-काल में ही था, फिर भी जो भी सुविधाएँ प्राप्त थीं उनका उपभोग भली भांति किया गया। स्वयं सरकारी अफसर होकर भी बालक जगदीश के पिता ने अपने पुत्र को आरम्भिक शिक्षा के लिए अंग्रेजी स्कूल न भेजकर देहाती पाठ-शाला में ही भेजा। पिता का यह रुख पुत्र के लिए कितना श्रेयस्कर हुआ इसका परिचय आप सर जगदीश के ही शब्दों में प्राप्त कीजिए—"........मैं ग्रामीण पाठशाला में भेजा गया। वहां मुझे किसान और मछुवों के बच्चों के साथ खेलने और रहने का अवसर प्राप्त हुआ। ये लड़के मुझे जंगलों में घूमने-फिरने, हिंसक पशुओं, नदी के अगाध-जल और कीचड़ में धँसे रहने वाले भयङ्कर जीवों की कहानियां सुनाया करते थे। इन्हीं ग्रामीण बच्चों के साथ रह कर मैंने सच्ची मनुष्यता का पाठ पढ़ा और यहीं पर मैंने प्रकृति का प्रेम भी पाया।"

बालक जगदीश की माता बड़ी ही सहृदया और सरल स्वभाव की महिला थीं। वे कट्टर हिन्दू धर्मावलम्बिनी थीं, फिर भी अछूतों के बच्चों से घृणा नहीं करती थीं और उन्हें प्रेम-पूर्वक खिलाती पिलाती थीं।

बालक जगदीश को मातृभाषा की आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उच्च-शिक्षा दिलाने के लिए कलकत्ते के सेण्ट जेवियर स्कूल में भर्ती कराया गया। स्कूली शिक्षा समाप्त कर बी० ए० तक आपने सेन्ट जेवियर कालेज में ही शिक्षा प्राप्त की। इस कालेज में सर जगदीश फादर लेफाण्ट के सम्पर्क में आये, जिन्होंने उन्हें भौतिक विज्ञान की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया। कुछ ही दिनों में विद्यार्थी जगदीश की भौतिक विज्ञान के प्रयोगों में विशेष अभिरुचि हो गई और देखते-देखते आप उसका प्रदर्शन स्वयं करने में भी पटु होगये।

विदेश-गमन और उच्च-शिक्षा

बी० ए० पास कर लेने के बाद आपने इंग्लैण्ड जाकर अध्ययन

करने की इच्छा प्रकट की। यद्यपि सर जगदीश सिविलियन बनना चाहते थे, क्योंकि अधिकार प्राप्त करने की लिप्सा नवयुवकों में स्वाभाविकतया होती है; पर सर जगदीश के पिता अपने बेटे की स्वाभाविक मनोवृत्ति से परिचित थे। इसलिए उसे वैज्ञानिक बनाना ही श्रेयस्कर समझते थे। पिता ने पुत्र को इंग्लैण्ड भेजा तो सही; पर सिविल सर्विस की परीक्षा पास करने के लिए नहीं; विज्ञान का विशेष अध्ययन करने के लिए। सर जगदीश को विलायत भेजने के लिए उनके पिता को जब विशेष खर्च की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने अपनी पत्नी के आभूषण तक बेच दिये।

इंग्लैंड पहुँचकर पहले तो जगदीशचंद्र डाक्टरी औषधि-विज्ञान पढ़ने लगे; पर बाद में मेडीकल कालेज छोड़ कर विशुद्ध विज्ञान के अध्ययन के लिए केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में नाम लिखाया। १८८४ ई० में आपने रसायन और वनस्पति विज्ञान में बी० ए० की परीक्षा ससम्मान पास की। परीक्षा में अच्छा स्थान प्राप्त करने के कारण आपको प्रकृति विज्ञान का विशेष अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्ति मिली। दूसरे वर्ष आपने लन्दन विश्वविद्यालय से बी०एस०सी० परीक्षा पास की। कैम्ब्रिज और लन्दन के विज्ञान के सभी विख्यात प्रोफेसर आपकी प्रतिभा पर मुग्ध थे। बाद में आविष्कार करते समय उन विद्वानों से आपको पर्याप्त सहायता मिली।

केवल परीक्षा पास करना अपना ध्येय न बना कर सर जगदीशचन्द्र ने इंग्लैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों से सम्पर्क बढ़ाने और उनको कार्यप्रणाली का सूक्ष्म निरीक्षण करने का भी निश्चय किया और कुछ समय उस काम में और बिताया। इंग्लैंड के तत्कालीन प्रसिद्ध वैज्ञानिक लार्ड रेले से आपने बहुत कुछ सीखा और फिर स्वदेश लौट आये।

जीवन में प्रवेश

इंग्लैंड से १८८५ ई० में लौट कर सबसे पहले आपने कलकत्ते

-के प्रेसीडेन्सी कालेज में अध्यापन कार्य आरम्भ किया। उस समय आप की आयु केवल २५ वर्ष की थी। कालेज सरकारी होने के कारण उस में अंग्रेज सरकार की भेद-नीति चलती थी। अतः आपको उसी श्रेणी के अंग्रेज प्रोफेसर का दो-तिहाई वेतन मिला। इस पर आपने यह सत्याग्रह किया कि लगातार तीन वर्ष तक वेतन का चैक शिक्षा विभाग को लौटाते रहे। तीन वर्ष बाद शिक्षा विभाग को आप के सत्याग्रह के सामने झुकना पड़ा और पिछले दिनों का जोड़ कर पूरा वेतन देना पड़ा।

१८८७ ई० में आपका विवाह श्री दुर्गामोहन दास की द्वितीय पुत्री के साथ हो गया। विवाह तो हो गया; पर जब तक वेतन का निर्णय शिक्षा विभाग से नहीं हुआ तब तक नवदम्पति को आर्थिक-कष्ट में ही जीवन व्यतीत करना पड़ा।

अनुसन्धान-कार्य

कालेज के अध्यापन-कार्य से जो अवकाश मिलता उसमें आप वैज्ञानिक प्रयोग अपने घर पर विशेष प्रकार से बनवायी गयी रसायन-शाला में करते। पहले आपने बिजली के सम्बन्ध में अनुसन्धान किये और विद्युत-वर्तनाओं के निर्धारण पर ऐसा आविष्कारपूर्ण लेख लिखा जिसकी कद्र लन्दन की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने की और आप की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसके बाद आप अनुसन्धान कार्य में लगे रहे और १८९६ ई० में आपने अपने अन्वेषण-कार्य का विस्तृत विवरण लन्दन के रायल एशियाटिक सोसाइटी के पास भेजा। सोसाइटी के अधिकारीगण आपके अनुसन्धान का विवरण पढ़ कर और उसका महत्व समझ कर आश्चर्य विमुग्ध हो गये। शीघ्र ही लन्दन विश्व-विद्यालय ने आपको डी०एस सी० (विज्ञानाचार्य) की उपाधि से विभूषित किया। इसके बाद सर जगदीश ने इर्ज द्वारा बतायी गयी

विद्युत-चुम्बकीय तरंगों की ओर ध्यान दिया। उन दिनों संसार के और भी कई वैज्ञानिक इसकी खोज में लगे थे और कुछ इन तरंगों द्वारा बिना तार के सन्देश भेजने का प्रयत्न कर रहे थे। इन अन्वेषकों में आचार्य जगदीश बोस के अतिरिक्त प्रोफेसर मारकोनी और सर औलिवर लाज के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन तीनों में विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र को पहले सफलता प्राप्त हुई। मारकोनी के आविष्कार के कई वर्ष पूर्व (१८९५ ई० में) उन्होंने कलकत्ते के टाउन हाल में तत्कालीन गवर्नर के सामने अपने इस आविष्कार का सफल प्रदर्शन कर दिया था, किन्तु एक भारतीय होने के कारण वे अपने इस आविष्कार को कार्य-रूप में परिणत कराने में पिछड़ गए। इसलिए प्रो० मारकोनी बाजी मार ले गये और सर जगदीश वायरलेस के आविष्कार के श्रेय से वञ्चित ही रह गये। स्वतंत्र देश के नागरिक प्रो० मारकोनी को सफलता और यश मिलना इसलिए स्वाभाविक था कि सर जगदीश को दूसरे देशों द्वारा अपने आविष्कार को मान्य कराने में ही बहुत समय लग गया और वह भी पूर्णतः असन्दिग्ध और खुले रूप में। उन्हें समयोचित सहायता नहीं मिली।

वृक्ष में जीव

बेतार की तरंगों का अनुसन्धान करते समय सर जगदीश को मालूम हुआ कि धातुओं के परमाणुओं पर भी अधिक दबाव पड़ने के कारण उनमें 'थकावट' आ जाती है और उन्हें उत्तेजित करने पर वह थकावट दूर हो जाती है। इस अनुभव ने उन्हें सूक्ष्म निरीक्षण की खोज की ओर प्रेरित किया। बहुत छान-बीन करके वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी तरह के पदार्थों में एक जीवन प्रवाहित होता है। उन्होंने प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया कि चेतन की तरह जड़ पदार्थ भी थकते हैं, चंचल होते हैं। विष-प्रयोग से मुरझा जाते हैं, नशे में मस्त

हो जाते हैं और मृतक भी हो जाते हैं। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि संसार के सभी पदार्थ सचेतन हैं। इस प्रकार उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि अचेतन में भी सुप्तावस्था में जीवन होता है। पेड़-पौधों के जीवन के स्पन्दन को प्रदर्शित कर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे भी सुखी और दुःखी होते हैं, उन पर सर्दी-गर्मी का असर पड़ता है और उन्हें भी हमारी तरह भूख-प्यास लगती है, वे भी खाते-पीते, काम और आराम करते हैं। इस विषय पर उन्होंने 'चेतन और अचेतन की प्रतिक्रिया' (रिस्पान्स इन् दि लिविंग एण्ड नॉन-लिविंग) नाम से एक ग्रन्थ लिखा जिसके द्वारा उपर्युक्त तथ्यों का सम्यक् रूप से प्रतिपादन किया गया।

उनके इस दूसरे अनुसंधान की धाक सारे संसार में जम गयी। १८९७ ई० में वे इंग्लैण्ड बुलाये गये। वहां पहला भाषण आपने विद्युत तरंगों पर दिया जिसकी प्रशंसा रायल एशियाटिक सोसाइटी के अधिकारियों और सदस्यों ने पूर्ण रूप से की। दूसरे भाषण में उन्होंने जीव-धारियों और वनस्पतियों के साम्य का विस्तृत प्रदर्शन किया। तीसरे भाषण में तो आपने दूसरे में कही गई बातों को प्रयोगों के द्वारा सिद्ध कर दिया।

तीसरे भाषण के बाद इंग्लैण्ड के कुछ वैज्ञानिक, जो जन्म भर वनस्पतियों के अनुसन्धान में कार्य करके भी उपर्युक्त तथ्यों को नहीं जान सके थे, बहुत झेंपे। प्रोफेसर हावेस नामक एक वैज्ञानिक ने तो सर जगदीश के जीवन भर के आविष्कार को एक दूसरी वैज्ञानिक संस्था—लीनियन सोसाइटी के द्वारा प्रकाशित कर उसे अपना सिद्ध करने का प्रयत्न किया। सर जगदीश का पहला भाषण और उनके कुछ प्रयोग देखने के बाद तुरन्त ही प्रो० हावेस ने यह गुप्त कार्यवाही कर डाली थी और इस प्रकार दूसरे के जीवन-भर के कार्य का यश स्वयं हड़पने की पूरी तैयारी कर चुके थे। किंतु रायल एशियाटिक

सोसाइटी में सर जगदीश बोस के आविष्कार के ऐसे अकाट्य प्रमाण मौजूद थे कि जब सारे मामले की जांच एक निष्पक्ष समिति द्वारा हुई तो प्रो० हावेस की कलई खुल गयी ।

१९०३ ई० में जब सर जगदीश ने अपने आविष्कार का विवरण रायल सोसाइटी की मुख-पत्रिका में प्रकाशित कराने का प्रस्ताव भारत से लिख भेजा तो आपके कुछ विरोधी वैज्ञानिकों ने यह आपत्ति की कि अब तक विज्ञानाचार्य बोस ने अपने सिद्धांतों के परिणाम पौधों-द्वारा अंकित कराकर नहीं दिखाए ।

विरोधियों की इस चुनौती के कारण सर जगदीश को मानो और भी प्रेरणा मिल गयी । वे इस विस्तृत और सूक्ष्म प्रदर्शन-कार्य के लिए यंत्रों का निर्माण करने में लग गये । ये यंत्र सर्वथा नवीन थे और इन्हें उन्होंने अपनी प्रयोगशाला में बड़े श्रम से तैयार कराया । इन यंत्रों द्वारा पौधों के हृदय की धड़कन, उनकी वृद्धि के आलेख तथा उनकी सम्वेदना एवं सुख-दुख का प्रत्यक्ष प्रदर्शन होने लगा । यही नहीं, सर जगदीश ने मैगनेटिक क्रेस्कोग्राफ यंत्र भी बनाया ।

इससे सर जगदीश का सम्मान स्वदेश और विदेश में सर्वत्र व्यापक रूप में हुआ । वैज्ञानिक और जन-सामान्य सभी ने आप का सम्मान किया। एक बार फिर आपने विदेश-गमन करके अपनी सफलता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन विज्ञान-जगत् के समक्ष किया जिससे सारे विश्व में आपके आविष्कार की दुन्दुभी बज गयी और आप 'पूर्व के जादूगर' के नाम से प्रसिद्ध हो गये । इँग्लैंड, जर्मनी और फ्रांस में आपके असामान्य आविष्कार का ढिंढोरा पिट गया । युरोप के भिन्न-भिन्न स्थलों की यात्रा करके आपने भारत का मुख उज्ज्वल कर दिया ।

१९१५ ई० में प्रेसिडेन्सी कालेज से अवकाश ग्रहण करने के बाद आपने वसु-विज्ञान-मंदिर की स्थापना की और इस प्रकार भारत की सच्ची सेवा करके उसका मस्तक ऊंचा किया ।



सरोजिनी नायडू

अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे हिमालय से प्राप्य सञ्जीवनी बूटी की खोज में लगे रहे। उनका यह कार्य अवश्य ही अधूरा रह गया, क्योंकि २३ नवम्बर १६३६ ई० को ७८ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हो गया ।

: बारह :

सरोजिनी नायडू

भारत के नारी-समाज में विद्वत्ता, राजनीतिज्ञता और सेवाभाव के लिए किसी भी स्त्री को इतना सम्मान प्राप्त नहीं हुआ जितना श्रीमती सरोजिनी नायडू को। भारतीय राजनीति से उनका अविभाज्य सम्बन्ध रहा है और गांधीजी के इस क्षेत्र में आने के समय से लेकर संयुक्त-प्रांत की गवर्नरी करने तक उनका सारा जीवन भारतीय राष्ट्र और महिला-समाज के उत्कर्ष में लगा है। यद्यपि अब वे इस संसार में नहीं हैं; पर अपने जीवन में वे जो-जो कार्य कर गयी हैं, वे उनकी स्मृति की अमिट रेखाएं हैं।

राजनीतिक जीवन का श्रीगणेश करने के पहले उन्होंने १८९८ ई० में ही समाज-सुधार को दृष्टि में रखते हुए अन्तर्जातीय और अंतर्प्रान्तीय विवाह डाक्टर मेजर एम० जी० नायडू से कर लिया। उन दिनों समाज-सुधार का मार्ग आजकल की भांति सरल नहीं था इसलिए आपका साहस प्रशंसनीय कहा जा सकता है।

१९१६ ई० से सरोजिनी देवी ने राजनीति में प्रवेश किया। १९१९ ई० में वे भारतीय होम-रूल लीग के शिष्टमण्डल की सदस्या बनकर विलायत गयीं और वहां भारतीय स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में जोरदार आन्दोलन किया। यद्यपि सरोजिनी देवी १९१९ ई०

से ही कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने लगी थीं ; पर गांधीजी के राजनीतिक क्षेत्र में आ जाने के बाद से वे उनकी परम-भक्त बन गयीं और तब से उनके पथप्रदर्शन में भारतीय महिला समाज का भी नेतृत्व करती रहीं और राजनीतिक आन्दोलन में भी भाग लेती रहीं ।

सरोजिनी देवी में काव्य-प्रतिभा बचपन से ही थी और बाद में तो उन्होंने उसका काफी विकास किया । १९२१ ई० मे जब वे भारतीय स्त्रियों के मताधिकार आन्दोलन के सिलसिले में इंग्लैंड गयीं तो उनकी कवित्व शक्ति बहुत बढ़ी चढ़ी थी और तब तक उनके विलासिता-पूर्ण जीवन में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। सामाजिक और राजनीतिक मामलों में दिलचस्पी रखते हुए भी वे काव्य-कानन में बुल-बुल की भांति चहकने और उच्च श्रेणी के साधनों द्वारा जीवन को सुखी बनाने की शौकीन थीं । किंतु गांधीजी के सम्पर्क में आते ही उनका सूक्ष्म काव्यचिन्तन विलुप्त-सा हो गया और वह विलासिता की सामग्री को दूर फेंक राजनीति के प्रबल झंझावात में कूद पड़ीं ।

विलायत से लौटकर जब सरोजिनी देवी ने देखा कि पंजाब के हत्याकाण्ड और फौजी कानून से तमाम देश में विक्षुब्धता के बादल छाये हुए हैं और असहयोग आन्दोलन का सन्देश सर्वत्र गूंज रहा है, यही अवसर था, जब वह अपना मार्ग चुन सकती थीं—इन्हें किसी ने कांग्रेस के कंटकाकीर्ण मार्ग पर महात्मा गांधी के आदेशानुसार चलने को बाध्य नहीं किया था ; पर उनकी आत्मा ने इस जीवन-पथ पर चलने का ही निश्चय कर लिया ।

सरोजिनी देवी की वाणी में जादू था । जब उन्होंने निश्चय कर लिया कि किसी भी मूल्य पर उन्हें विदेशी शासन का विरोध करना है तो वे इसके लिए कृत-संकल्प हो गईं और ११ मार्च १९२२ ई० को जब महात्मा गांधी को राजद्रोह के अभियोग में ६ वर्ष की सजा हो गई तो महात्माजी ने जेल जाते समय सरोजिनी देवी से कहा था—

"'हिन्दुस्तान की एकता मैं तुम्हारे हाथ में सौंपता हूँ।" और सरोजिनी देवी ने इस धरोहर की रक्षा पूरे प्राण-पण से की। महात्माजी के जेल जाने के बाद जब स्व० देशबन्धु दास और पंडित मोतीलाल नेहरू ने कौंसिल प्रवेश की ठानी तो श्रीमती सरोजिनी देवी ने उसका घोर विरोध किया।

प्रवासियों की सेवा

सरोजिनी देवी में प्रवासी भारतीयों की सेवा की भावना भी बहुत तीव्र थी। वे १९१७ से ही शर्तबन्दी और कुली प्रथा का विरोध करती आई थीं, १९२२ ई० में केनिया प्रवासी हिन्दुस्तानियों के निमंत्रण पर वे दक्षिण अफ्रीका गईं। वहाँ उन्होंने जो भाषण दिये उससे उन देशों में हिन्दुस्तानियों के प्रति प्रतिष्ठा के भाव बढ़ गये।

दक्षिण अफ्रीका की भारतीय कांग्रेस ने उन्हें मोम्बासा अधिवेशन की अध्यक्षा बनाया। उस अवसर पर उनके भाषण का प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि हिन्दुस्तानियों को 'कुली' कहने और समझने वाले दक्षिण अफ्रीका के गोरों के होश उड़ गये।

कांग्रेस की अध्यक्षा

सरोजिनी देवी की सेवाओं से राष्ट्र पूर्णतः परिचित था, इसलिए १९२५ ई० में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन की अध्यक्षा वे ही चुनी गईं। उनका उस समय का भाषण अद्भुत और अत्यंत प्रभावशाली था। यहाँ भाषण का सारांश भी देने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं है; पर अध्यक्षा चुनी जाने पर उन्होंने जो संदेश देशके नाम प्रकाशित किया था, वह संक्षिप्त और सारगर्भित होने के कारण यहाँ दिया जाता है :—

"मैं एक स्त्री हूँ इसलिए मेरा कार्यक्रम सीधा-सादा, घर-गृहस्थी

से सम्बंध रखनेवाला है। मैं सिर्फ यह चाहती हूँ कि भारतमाता अपने घर की एक बार फिर सच्ची मालकिन बन जाय; इसके अपार साधनों पर एक मात्र इसी का प्रभुत्व हो जाय और आतिथ्य-सत्कार की सम्पूर्ण क्षमता भी उसी के हाथ रहे। भारतमाता की आज्ञाकारिणी बेटी की हैसियत से मेरा यह कर्त्तव्य होगा कि मैं अपनी माता का घर सँभालूँ, और उन चिन्ताजनक झगड़ों का निपटारा कराऊँ जिनके कारण इसका पुराना संयुक्त पारिवारिक जीवन— जिसमें अनेक धर्म और जातियाँ शामिल हैं, भंग न हो जाय। मेरा यह भी कार्य होगा कि इसकी दुर्बल और सबल से सबल सन्तानों को, इसकी पोष्य सन्तान को और उन सभी अतिथियों तथा अपरिचितों को; जो इसकी सीमा में मौजूद हैं, समान अधिकार प्राप्त कराऊँ।"

अपने इस सन्देश को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होंने सदा प्रयत्न किया। अनवरत आशा और अदम्य उत्साह से वे अपने इस कर्त्तव्य पर डटी रहीं।

१९२८ ई० में वे अमेरिका गईं और वहाँ अपने भाषणों द्वारा अमेरिकन जनता पर जो प्रभाव डाला उससे राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा की। ईसाई मिशनरियों के कुप्रचार से अमेरिकन तक भारत को साँपों, जंगलों, और मध्यकालीन देशी राजाओं का देश समझे बैठे थे और इसे शिक्षा और सभ्यता ग्रहण करने के अयोग्य समझे बैठे थे; पर एक हिन्दुस्तानी स्त्री की वाणी का चमत्कार-पूर्ण प्रभाव देखकर उन्हें अपना मत बदलना पड़ा।

सत्याग्रह आन्दोलन

इसके बाद सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ गया। सारे देश में अभूतपूर्व जागृति की लहर दौड़ गई। महात्मा गाँधी की डाण्डी-यात्रा और नमक सत्याग्रह ने ब्रिटिश सरकार के छक्के छुड़ा दिये। १४ अप्रैल १९३०

ई० को तत्कालीन राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू और ५ मई को महात्मा गाँधी को गुजरात के कराड़ी स्थान में गिरफ्तार कर लिया गया।

सरोजिनी देवी ऐसे अवसर पर भला चुप कैसे बैठ सकती थीं। स्व० अब्बास तय्यबजी की गिरफ्तारी के बाद धरसाणा के सरकारी नमक भण्डार पर धावा करने का नेतृत्व सरोजिनी देवी ने ही किया और सख्त धूप में २७ घण्टे तक सड़क पर बैठी रहीं। इस अवसर पर डि० पुलिस कमिश्नर ने उन्हें भोजन तो क्या पानी तक न ग्रहण करने दिया। १६ मई को वे गिरफ्तार की गईं। इसके बाद सारे देश का नारी-समाज इस प्रकार जाग उठा जैसे सोये हुए सिंह की निद्रा-भंग हो गई हो। युगों से उपेक्षित नारी-समाज को जागरण का मानो एक अश्रुतपूर्व सन्देश मिल गया और इस आन्दोलन में सहस्रों महिलाएं मातृभूमि की रक्षा के लिए मैदान में कूद पड़ीं। सरोजिनी देवी का नेतृत्व और गिरफ्तारी भारतीय नारी-समाज के लिए विदेशी शासन की एक ललकार-सी सिद्ध हुई और उनका जवाब नारी-समाज ने अद्भुत क्षमता दिखाकर दे दिया। महलों में रहनेवाली कोमलांगी बालाएं गोद में शिशु लिये हुए भी राष्ट्रीय युद्ध के मैदान में आ डटीं और आन्दोलन को सफल बनाकर छोड़ा।

बहुत दिनों तक सरोजिनी देवी कांग्रेस हाईकमांड (कार्यकारिणी) की सदस्या रहीं।

१९४२ ई० के क्रांतिकारी आंदोलन में कांग्रेस कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों के साथ वह भी गिरफ्तार कर ली गई थीं, पर लगभग दो वर्ष बाद जब उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया तो उन्हें बिना शर्त छोड़ दिया गया।

सरोजिनी देवी के काव्य-साहित्य का सारे संसार के साहित्यिकों में सम्मान है। वह 'भारत-कोकिला' कही जाती थीं। हिन्दी विश्व-भारती की वे उपाध्यक्षा थीं। १९४७ ई० में नई दिल्ली में जो एशियाई राष्ट्रों

का सम्मेलन हुआ था उस का संगठन उन्होंने ही किया था। उस अवसर पर उन्होंने जो भाषण दिया था उसे सुनने वाले एशियाई राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने दांतों तले ऊंगली दबायी थी। वृद्धावस्था में भी उन्होंने कोकिल-विनिन्दित स्वर में अपने भाषण का 'गान' किया था। वे भारत की प्रथम महिला गवर्नर थीं। सन् १६४६ में लखनऊ में उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी अन्त्येष्टि क्रिया राजकीय-ढंग से की गई

बचपन और शिक्षा

सरोजिनी देवी का जन्म हैदराबाद दक्षिण में १३ फरवरी १८७७ ई० में हुआ। इनके पूर्वज बंगाल के ब्रह्मनगर स्थान से यहा आये थे। सरोजिनी के पिता का नाम था डा० अघोरनाथ चट्टोपाध्याय। ये विज्ञान के प्रसिद्ध पण्डित थे और उन्होंने एडिनबरा विश्व-विद्यालय से डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की थी। वे प्रतिभाशाली और अध्ययनशील विद्वान् थे। हैदराबाद में निज़ाम कालेज की स्थापना उन्होंने ही की थी और उन्होंने शिक्षा-प्रसार में ही अपना सारा जीवन लगा दिया था।

सरोजिनी उनकी सबसे बड़ी सन्तान थी। उन्होंने सरोजिनी को पाश्चात्य ढंग पर शिक्षा दिलाई और अंग्रेजी का प्रारम्भिक अभ्यास ही इतना करा दिया कि वह उनकी मातृ-भाषा-सी हो गयी। सरोजिनी ने ११ वर्ष की अवस्था में ही अंग्रेजी कविता लिखी थी। १२ वर्ष की आयु में मैट्रिक पास करने के बाद वे ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिए इङ्गलैण्ड भेज दी गयीं। वहां वे तीन वर्ष तक किंग्स कालेज (लन्दन) और गिर्टन (कैम्ब्रिज) में अध्ययन करती रहीं। इस बीच स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण उन्होंने इटली की यात्रा की। वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों से वे बहुत प्रभावित हुईं।

१६१८ ई० में सरोजिनी देवी शिक्षा समाप्त कर स्वदेश लौट आयीं और यहाँ के राजनीतिक क्षेत्र में अवतीर्ण हुईं।

———

: तेरह :

राजेन्द्रप्रसाद

कृशकाय, श्याम-वर्ण; पुराने ढंग की मूँछें, वेश-भूषा और परिधान-ज्ञान से वेपर्वाह, चिर-रोगी, अतिशय विनम्र और सरल – यही वे शब्द हैं, जिनमें राजेन्द्र बाबू को चित्रित किया जा सकता है।

पर इस बाह्य दर्शन के पीछे है अदम्य उत्साह, वज्रसमान दृढता, अत्यन्त सरसता, सरलता, मृदुता और वह सेवा-भाव, जिसके सामने संसार मस्तक झुका देता है।

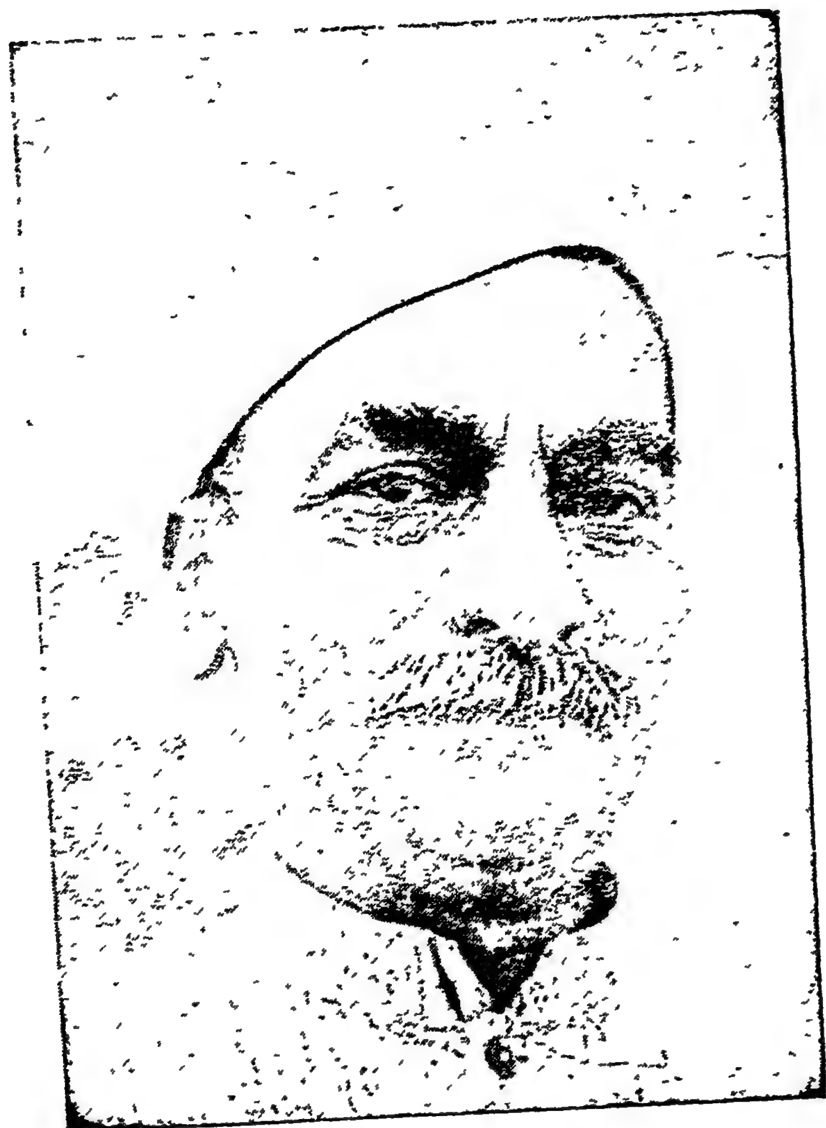
बम्बई कांग्रेस के समय साधारण व्यापारिक श्रेणी के गुजरातियों ने राजेन्द्र बाबू का जुलूस निकलने पर उन्हें देखते ही कहना शुरू किया था—

"आ कांग्रेस वालाओ ने शूं कया छें।
आ दूधवाला भैया ने राष्ट्रपति बनावी दीधा छे।"

पर उन्हें मालूम नहीं था कि यह 'भैया' उन कोटि कोटि 'भैयों' के निर्मल हृदय का प्रतीक है जो इस महानगरी में बस कर अपनी जीविका-निर्वाह के लिए दूध बेचते हैं।

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद

महात्मा गाँधी के बाद हिन्दुस्तान में विनम्र व्यक्तित्व; अतिशय लगन और पारदर्शी सचाई के नेता डा० राजेन्द्रप्रसाद हैं। ये ऐसे



डा० राजेन्द्र प्रसाद

निरीह, क्रोधहीन और सर्वप्रिय हैं कि इन्हें "अजात-शत्रु" भी कहा जाता है, जिसका अर्थ यह है कि इनका शत्रु या विरोधी कोई पैदा ही नहीं हुआ। अपनी सामान्य वेशभूषा, बनाव, सिंगारहीन व्यक्तित्व, बेतरतीब मूछें और हद दर्जे की सादगी के कारण राजेन्द्र बाबू 'माटी पुरुष' कहे जाते हैं।

पूर्वज और परिवार

भारत के इस सर्वप्रिय नेता का जन्म उत्तरी बिहार के सारन जिले के जीरादेई नामक एक गाँव में हुआ था। इनके पूर्वज लगभग दो सौ वर्ष पहले फतेहपुर सीकरी (आगरा) में रहते थे। बाद में यह परिवार संयुक्त-प्रांत के ही अमोढा नामक एक स्थान में बस गया। नौकरी और व्यापार के सिलसिले में हिन्दुस्तान के कायस्थ और वैश्य घराने के लोग प्रांत-प्रांत में स्थानान्तरित हुआ करते हैं। राजेन्द्र बाबू का परिवार भी युक्तप्रांत से बिहार में चला गया और तब से वहीं बसा हुआ है। राजेन्द्र बाबू के पितामह मुंशी मिश्रीलाल के बड़े भाई मुंशी चौधरलाल २०-२५ वर्ष तक हथुआ राज्य के दीवान रहे।

राजेन्द्र बाबू के पिता का नाम बाबू महादेवसहाय था। ये बड़े धर्मात्मा और दयालु स्वभाव के थे। वे अपने खर्च से गाँव में दवाइयां मुफ्त बाँटा करते। पत्नी भी अपने पति से पीछे न थीं। ये कभी अपने द्वार से किसी को खाली हाथ न जाने देतीं। उनमें क्रोध का नाम न था। राजेन्द्रबाबू को ये सद्गुण अपनी पूजनीया माताजी से मिले प्रतीत होते हैं।

राजेन्द्र बाबू का जन्म १६४१ वि० में अगहन की पूर्णमासी को हुआ था जो ईसवी सन् के हिसाब से ३ दिसम्बर १८८४ को होता है।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार बचपन से ही

राजेन्द्र बाबू की बुद्धि तेज थी और उनके परिवार वालों ने उनकी योग्यता का अनुमान लगा लिया था।

शिक्षा-दीक्षा

राजेन्द्र बाबू की आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा उनके घर पर ही हुई। बचपन में उन्होंने एक मौलवी से उर्दू फारसी पढ़ी थी। नौ वर्ष की अवस्था में अपने बड़े भाई बाबू महेन्द्रप्रसाद के साथ आपको छपरा के जिला स्कूल में भर्ती किया गया। स्कूल में पहुँचते ही राजेन्द्र बाबू की बुद्धि और भी चमक उठी। बालक राजेन्द्र जिस परीक्षा में बैठता उसी में पहले नम्बर से पास होता। किसी भी इम्तहान में कोई लड़का उसकी बराबरी न कर सकता। प्रतिवर्ष परीक्षा में सबसे अधिक नम्बरों से पास होने के कारण उन्हें पुस्तकें इनाम में मिलतीं। १९०२ ई० में इसी स्कूल से इस अलौकिक छात्र ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा सर्वोच्च नम्बरों से पास कर ली। कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षा इसलिए देनी पड़ी कि तब तक बिहार स्वतंत्र प्रांत नहीं बन पाया था।

मैट्रिक पास करने के बाद आपको कालेज में पढ़ने के लिए कलकत्ते भेजा गया। कालेज की पढ़ाई में अन्य विषयों के साथ आपने हिन्दी भी ली और उसमें बड़ी सफलता प्राप्त कर ली। कालेज की पढाई में वे इतने तेज थे कि बंगाली छात्र उनसे ईर्ष्या करते थे। १९०६ ई० में बी० ए० और उसके दूसरे वर्ष एम० ए० की परीक्षाओं में आप सारे विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में सर्व-प्रथम रहे। एम० ए० पास कर चुकने के बाद आपने कानून का अध्ययन किया। इस प्रकार एम० एल० की परीक्षा देने पर उसमें भी आप सारे विश्वविद्यालय में सर्व-प्रथम रहे। किसी हिन्दी-भाषी विद्यार्थी के लिए यह पहला ही अवसर था जब उसने कलकत्ता विश्वविद्यालय की लगातार सभी परीक्षाओं

में सर्वोच्च नम्बरों से पास होने का गौरव प्राप्त किया हो।

राजेन्द्र बाबू एक आदर्श विद्यार्थी थे। वे पढ़ने में रटने और निरन्तर पढ़ते रहने के विरुद्ध हैं। वे खेलने में भी समय लगाते थे और व्याख्यान देने और लेख लिखने का भी उन्हें शौक था। फिर भी परीक्षा में वह एफ० ए० से लेकर एम० ए० और बाद में एम० एल० तक सर्व-प्रथम रहे और सभी श्रेणियों में छात्रवृत्तियां एवं स्वर्ण-पदक प्राप्त करते रहे। जिन दिनों राजेन्द्र बाबू कलकत्ता विश्वविद्यालय में पढ़ते थे, उन्हीं दिनों प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु और आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय (बंगाल केमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल कम्पनी लिमिटेड के संस्थापक) भी अध्यापन कार्य करते थे। उन्होंने राजेन्द्र जैसा मेधावी छात्र पाकर उनके प्रति बड़े प्रेम और प्रसन्नता के भाव प्रकट किये।

ऊपर बताया जा चुका है कि विद्यार्थी जीवन से ही राजेन्द्र बाबू को भाषण करने और पत्रों में लेख लिखने का शौक लग गया था। आपने कलकत्ते में विद्याध्ययन के लिए जाने वाले बिहारी छात्रों के हितार्थ एक बिहारी क्लब की स्थापना की और प्रोफेसर सर सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय द्वारा स्थापित डॉन (प्रभात) सोसाइटी द्वारा नवयुवकों में किये जाने वाले स्वदेशी, स्वावलम्बन और आध्यात्मिक विचारों के प्रचार-सम्बन्धी भाषण देने और उसके मुखपत्र 'डॉन' में लेख लिखने में भाग लेने लगे। राजेन्द्र बाबू इस संस्था के सक्रिय सदस्य बन गये। इस प्रकार विद्यार्थी जीवन से ही उनके हृदय में देश-भक्ति के अंकुर उत्पन्न हो चुके थे। वे जहां तक होता कोई विलायती चीज न खरीदते। सादगी और स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार उन्होंने विद्यार्थी-जीवन से आरम्भ कर दिया था।

जीवन में प्रवेश

कालेज की पढ़ाई समाप्त कर लेने के बाद राजेन्द्र बाबू ने सबसे पहले मुजफ्फरपुर के भूमिहार कालेज और कलकत्ते के सिटी कालेज में

अध्यापन का कार्य किया। आदर्श की दृष्टि से यह काम उत्तम था और राजेन्द्र बाबू की रुचि भी इस ओर थी; परन्तु अध्यापन-कार्य के द्वारा न तो सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़ा जा सकता था, न आर्थिक-दृष्टि से। उन्ही दिनों (१९१० ई०) राजेन्द्र बाबू को स्व० गोपालकृष्ण गोखले ने आमंत्रित किया कि वे उनके लोक-सेवकसंघ (सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी) में सम्मिलित होकर सार्वजनिक सेवा का शिक्षण प्राप्त करें। राजेन्द्र बाबू उस ओर बहुत आकृष्ट हुए; पर अपने बड़े भाई बाबू महेन्द्रप्रसाद की आज्ञा न होने के कारण उधर न जा सके।

१९११ ई० से राजेन्द्र बाबू ने कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत आरम्भ की और १९१२ तक उसी में लगे रहे। इस बीच बिहार में भी पटना हाईकोर्ट की स्थापना हो गई, इसलिए वे कलकत्ता से पटना आगये। वहाँ उनकी वकालत खूब चमकी और केवल सच्चे मुकदमे लेने के कारण जनता और न्यायाधीशों में सर्वत्र इनकी धाक जम गयी। उनकी आमदनी भी काफी बढ़ गयी और ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब वह हाईकोर्ट के जज नियुक्त हो जायंगे।

परंतु जिसके भाग्य में संसार का कोई महान् काम करना बदा होता है वह ऐसे कामों में नहीं फँसता जो और लोग भी आसानी से कर सकते हैं। १९१६ ई० में राजेंद्र बाबू ने सार्वजनिक कार्य का श्रीगणेश कर दिया। उन दिनों भारत सरकार के शिक्षा-सदस्य सर शंकरन्-नायर ने पटना विश्वविद्यालय का जो बिल पेश किया वह बहुत ही संकुचित, असम्बद्ध और प्रतिक्रियापूर्ण था। राजद्र बाबू ने उन दिनों बिहार प्रांतीय सम्मेलन के मंत्री की हैसियत से उस बिल का विरोध सार्वजनिक सभाओं और समाचार पत्रों के आंदोलन द्वारा आरम्भ कर दिया। फलतः सरकार को उसमें अनेक हेर फेर करने पड़े। १९१७ ई० में राजेंद्र बाबू को पटना विश्वविद्यालय की स्थापना होते ही सिनेट में रख लिया गया और उसके बाद इन्हें सिण्डीकेट में भी चुन लिया

गया। विश्वविद्यालय की उन्नति के लिए आपने पर्याप्त कार्य किया और आपके कार्य से जनता और विश्वविद्यालय के अधिकारी इतने प्रसन्न थे कि आपके वाइसचान्सलर चुने जाने का अवसर निकट आ-गया था; पर राजेन्द्र बाबू के द्वारा भारत में और भी बड़े बड़े काम होने थे। इसलिए वह किसी एक विश्वविद्यालय के खूंटे से बँधकर काम करने के लिए तैयार न थे।

चम्पारन और गांधीजी

जिन दिनों का जिक्र ऊपर किया गया है उन्हीं दिनों बिहार में एक ऐसा आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिसने राजेन्द्र बाबू के जीवन की दिशा बदल दी। चम्पारन (उत्तरी बिहार) में गोरे उन दिनों नील की खेती कराते थे और उन्होंने बड़ी बड़ी कोठियां बना कर वहां नील बनाने का कारबार खोल रखा था। इन 'निलहे' गोरों के लिए काम करने वाले किसानों और कोठियों के मजदूरों की घोर दुर्दशा थी। १६१७ ई० में गांधीजी (जो अभी तक भारतीय राजनीति में आगे नहीं आ पाये थे) इन किसानों और मज़दूरों की तकलीफों की जांच करने बिहार गये। जब उनके आगमन का उद्देश्य वहां के सरकारी अधिकारियों को मालूम हुआ तो वे क्रुद्ध हुए और उन्होंने उन्हें आज्ञा दी कि चौबीस घण्टे के अन्दर वे बिहार प्रांत से निकल जायं।

गाँधीजी भला ऐसी आज्ञा मानने वाले कब थे। वे तो दक्षिणी अफ्रीका में अपने सत्याग्रह-अस्त्र की परीक्षा कर उसका प्रयोग करने के लिए हिन्दुस्तान आये थे और उसके लिए स्थान और अवसर की खोज में थे। चम्पारन उनका प्रथम प्रयोग-क्षेत्र बना।

जब गाँधीजी ने बिहार छोड़ जाने से इन्कार कर दिया तो सरकारी अधिकारियों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया; पर बाद में इन्हें छोड़ दिया गया। इस चम्पारन-सत्याग्रह में राजेन्द्र बाबू गांधीजी के दाहिने हाथ

बन गये। बिहार की जनता उमड़ उठी और सारे प्रांत में सरकार के विरुद्ध असंतोष की लहर दौड़ गई। आखिर बिहार सरकार को झुकना पड़ा और उसने चम्पारन के निलहे गोरों के किसानों और मजदूरों की स्थिति की जांच के लिए एक समिति नियुक्त करदी, जिसमें गाँधीजी को भी आमंत्रित किया गया। इस जांच समिति ने महात्मा जी और राजेन्द्र बाबू के प्रयत्नों से जनता की शिकायतें सुनीं और उसके पक्ष में अपना मत दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि १९१८ ई० में बिहार कौंसिल ने चम्पारन अग्रेरियन कानून पास कर दिया और इस प्रकार किसान और मजदूर प्रजा की अधिकांश शिकायतें दूर हो गयीं। गोरों की रंग-भेद सम्बन्धी उच्चता इस आंदोलन द्वारा काफूर हो गई और इस दृष्टि से भारत में सत्याग्रह-आन्दोलन के इस प्रथम प्रयोग को सफलता प्राप्त हुई।

प्रथम यूरोपीय महायुद्ध के बाद १९१९ ई० में जब बृटिश सरकार ने भारत को रौलट-ऐक्ट रुपी काला कानून प्रदान किया तो हिन्दुस्तानियों की आंखें खुल गयीं और एक प्रबल आन्दोलन ने उग्र-रूप धारण कर विदेशी सरकार की जड़ें हिलानी शुरू कर दीं। पंजाब में फौजी कानून जारी हुआ और भीषण नर-संहार किया गया। जलियांवाला बाग काण्ड के बाद सारा देश सोये हुए सिंह की तरह जाग उठा। महात्मा गांधी के नेतृत्व में सारा देश उठ खड़ा हुआ। ऐसे अवसर पर राजेन्द्र बाबू भला कब चुप बैठने-वाले थे। उन्होंने वकालत को लात मार दी और गांधीजी के पूर्ण अनुयायी बनकर उनके आदेशानुसार कार्य करने लगे। राजेन्द्र बाबू ने सरकारी स्कूल कालेज छोड़ने वाले विद्यार्थियों के लिए बिहार-विद्यापीठ की स्थापना कर दी और इस प्रकार राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता तैयार करने के लिए उन्होंने एक अद्भुत संस्था को जन्म दिया, जिसमें ऐसी ६९ संस्थाएं सम्बद्ध हो गयीं जिनके विद्यार्थियों की संख्या ६२,००० थी।

इसके बाद असहयोग आंदोलन में जिस निष्ठा, दृढ़ता और एका-ग्रता के साथ राजेन्द्र बाबू ने गांधी जी का साथ दिया उसका उदाहरण कठिनता से मिलेगा। उन्होंने अपना सारा जीवन इस राष्ट्रीय-यज्ञ में होम कर दिया और देश के तीनों आंदोलनों—असहयोग, सत्याग्रह और सन् बयालीस की क्रांति में उन्होंने जिस विश्वास और तत्परता के साथ गांधीजी का पदानुसरण किया उसको देखते हुए उन्हें गांधीवाद का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक माना जाता है।

राजेन्द्र बाबू ने छः बार जेल की कड़ी यातनाएं भोगी हैं और सच्चा त्याग किया है। बिहार प्रांत के लिए ही नहीं, सारे देश के लिए उनकी सेवाएं अद्वितीय रही हैं। वे एक अद्वितीय राजनीतिक साधु हैं—उन्होंने देश के लिए घर-बार, धन-धाम सब छोड़ दिया, पर कभी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। सेवा और त्याग को ही उन्होंने आत्मानन्द का सच्चा साधन बना लिया है।

पारिवारिक जीवन

राजेन्द्र बाबू का विवाह बचपन में ही हो गया था और इस समय उनके दो पुत्र—श्री मृत्युंजय प्रसाद और श्री धनंजय प्रसाद मौजूद हैं, जो देश-सेवा और समाज-सुधार के कामों में काफी भाग लेते हैं। राजेन्द्र बाबू के बड़े भाई बाबू महेन्द्रप्रसाद के स्वर्गवास के बाद घर गृहस्थी का सारा बोझ राजेन्द्र बाबू पर ही आ पड़ा है। अपनी स्त्री और पुत्रवधू को आपने गांधीजी के सत्याग्रह आश्रम में शिक्षा दिलायी थी। आपकी बड़ी बहन श्रीमती भगवती देवी भी देश-सेवा के कामों में बराबर भाग लेती हैं और सत्याग्रह आंदोलन में १९३२ ई० में तीन महीने की जेल काट आयी हैं।

आदर्श जनसेवक

राजेन्द्र बाबू महात्मा गांधी के अनुयायी और आदर्श जन-सेवक

हैं। उन्होंने गांधी जी से बहुत कुछ सीखा है। कम से कम सादगी और स्वावलम्बन में तो वह महात्मा जी के सोलहों आने अनुयायी रहे हैं। उनकी आदर्श जन-सेवा पर मुग्ध हो १९३२ ई० में उन्हें कांग्रेस का सभापति चुना गया था, किंतु उस वर्ष सत्याग्रह आंदोलन चल रहा था इसलिए वह कांग्रेस न हो सकी। १९३४ ई० में बम्बई कांग्रेस के आप सभापति हुए और उस वर्ष कांग्रेस का स्वर्ण समारोह बम्बई में आपकी ही अध्यक्षता में बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। बाद में त्रिपुरी कांग्रेस के भी आप सभापति चुने गये और अभी तक कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्यों में हैं। यही नहीं, स्वाधीनता प्राप्त भारत की नयी सरकार के खाद्य-सचिव का कार्य उन्होंने जिस लगन निष्ठा और संयम के साथ किया है वह अन्य मंत्रियों के लिए आदर्श है। आचार्य कृपलानी के इस्तीफा दे देने पर गत वर्ष (१९४८ तक) आपने राष्ट्रपति का कार्य-भार भी सम्भाला है।

राजेन्द्र बाबू की सर्वप्रियता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है कि वे स्वाधीनता-प्राप्त भारत की विधान-परिषद् के अध्यक्ष चुने गये जो किसी भी नव-स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्र के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण पद माना जाता है। विधान परिषद् द्वारा स्वीकृत विधान के अनुसार भारत को गणतंत्र घोषित किया जाना था। फलतः २६ जनवरी १९४९ को भारत राष्ट्र गणतंत्र घोषित कर दिया गया। प्रस्तुत गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति का पद भी आप ही को सौंपा गया। राजेन्द्र बाबू की साधुता एवं शुद्ध जीवन का ही यह परिणाम है कि राष्ट्र ने उन्हें ही इस पद के लिए चुना।

अन्य कार्य

राजनीतिक क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी आपने बहुत काम किया है जिससे देश में आपकी सच्ची सेवा और लगन की धाक जम

चुकी है। विद्यार्थी जीवन के दिनों से ही उनमें यह धुन थी कि जिधर भी अपनी सेवा की आवश्यकता देखते तुरन्त वहां पहुँच जाते थे। यह बतलाया जा चुका है कि वकालत और देश-सेवा के क्षेत्र में आने से पहले आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत-अध्यापन-कार्य (प्रोफेसर) भी कर चुके थे। उन दिनों उस विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर विख्यात शिक्षा शास्त्री सर आशुतोष मुकर्जी थे। उनके अनुरोध से राजेन्द्र बाबू ने विश्वविद्यालय के लॉ-कालेज में १९१४ से १९१६ ई० तक अध्यापन कार्य किया था। स्वर्गीय देशबन्धु चितरंजनदास और रासबिहारी घोष भी राजेन्द्र बाबू के कानून-ज्ञान की कद्र करते थे। स्वर्गीय लार्ड सिन्हा, श्री हसनइमाम और सर गणेशदत्त सिंह भी आपका बड़ा आदर करते थे।

देश-सेवा के लिए हिन्दी प्रचार की आवश्यकता का अनुभव करते हुए राजेन्द्र बाबू ने हिन्दी में ही भाषण देने और लेख लिखने की ओर विशेष मनोयोग दिया था। जिन दिनों आप कलकत्ते में विद्याध्ययन कर रहे थे तभी से वहां की हिन्दी-साहित्य परिषद् और बड़ा बाजार पुस्तकालय के कार्यों में हाथ बटाते थे। साहित्य परिषद् में आप अपने लिखे निबन्ध आदि सुनाया करते और वादविवाद में भाग लेते थे; पत्र पत्रिकाओं में भी आपके लिखे हिन्दी लेख प्रकाशित हुआ करते थे। जिनमें भारत मित्र, भारतोदय और कमल किशोर रूप में उल्लेखनीय हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से भी राजेन्द्र बाबू का सम्बन्ध शुरू से ही था। आप उसके जन्मकाल से ही सदस्य हैं और बिहार प्रांतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के (१९२३ ई० में) सभापति भी रहे हैं। राजेन्द्र बाबू कठिन और सरल दोनों ही प्रकार की हिन्दी लिख सकते हैं और उनकी आत्मकथा सरलतम हिंदी का एक सरल नमूना है। अंग्रेजी पत्रों में 'पटना लॉ वीकली' और 'सर्चलाइट' के आप सम्पादक और संस्थापक रहे हैं। आपने १९२० ई० में 'देश' नामक एक सुन्दर हिन्दी साप्ताहिक भी निकाला था, जिसका

सम्पादन भी शुरू में आप ही करते रहे, पर पीछे यह पत्र बन्द हो गया।' मातृ-भाषा हिन्दी के अतिरिक्त प्रांतीय भाषाओं में बंगला आप अच्छी तरह बोल और लिख लेते हैं। गुजराती भाषा का भी आपको काम-चलाऊ ज्ञान है। 'चम्पारन में महात्मा गांधी' आपकी लिखी वह प्रसिद्ध हिन्दी पुस्तक है जिसका अनुवाद अंग्रेजी और गुजराती में हुआ था। १९२९ ई० में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आप राष्ट्र-भाषा परिषद् के सभापति थे। इस अवसर पर दिया गया आपका भाषण अत्यन्त महत्व की चीज है।

जन-सेवा की भावना राजेन्द्र बाबू में आरम्भ से ही थी। जिन दिनों आप कलकत्ता में वकालत कर रहे थे उन दिनों बंगाल में दामोदर और बिहार की पुनपुन नदियों में भीषण बाढ़ आ गयी। राजेन्द्र बाबू वकालत का काम छोड़कर बाढ़पीड़ितों के कष्ट-निवारण-कार्य में जुट गये। यह काम करते हुए रात किसी रेलवे लाइन पर या खुले स्थान पर काटनी पड़ती थी, फिर भी राजेन्द्र बाबू उससे विचलित न हो सेवा-कार्य में लगे रहते थे।

१९३४ ई० की १८ जनवरी को बिहार में भीषण भूकम्प आया जिस से उत्तरी बिहार का अधिकांश भाग नष्ट और ध्वंस हो गया। अनगिनत मनुष्य और पशु अकाल के गाल में चले गये। इन दिनों राजेन्द्र बाबू सत्याग्रह-आन्दोलन के सिलसिले में अपनी पन्द्रह मास की सज़ा जेल में भोग रहे थे। १७ जनवरी को वे जेल से छूटे तो बिगड़े हुए स्वास्थ्य को सुधारने के बदले भूकम्प-पीड़ितों के कष्ट-निवारण में लग गये। आपको भूकम्प-पीड़ित केन्द्रीय सहायक समिति का सभापति चुना गया। उन दिनों स्वयं रोगी होते हुए भी राजेन्द्र बाबू ने जिस धुन के साथ सेवा-कार्य हाथ में ले लिया उसे देखकर सब को आश्चर्य हुआ। सेवा-केन्द्र के कार्यालय में ही अपनी रोगी शय्या डाल कर वह कार्यकर्त्ताओं को दिन-रात आवश्यक आदेश देने में लग गये।

स्वास्थ्य सुधरते ही उन्होंने दौरा शुरू किया और धन की उगाही की और सहायता के कार्य को भी मजबूत बना दिया। आपकी प्रेरणा से महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए संसार-व्यापी अपील की जिससे बिहार के पुनर्निर्माण में धन की कमी नहीं रही। भूकम्प के बाद बिहार में बाढ़ भी आ गई जिससे भयंकर जन-नाश का भय उपस्थित हो गया। राजेन्द्र बाबू की कर्त्तव्य निष्ठा, कार्यशीलता और विलक्षण गति-विधि ने बाढ़ पीड़ितों के कष्ट निवारण का कार्य बहुत कुछ सुलभ कर दिया। इस प्रकार यहाँ तक इन जन-सेवा के कार्यों से राजेन्द्र बाबू का दिव्यरूप जनता की नजरों में और भी निखर आया और इनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और इसके बाद आप बम्बई कांग्रेस के सभापति चुने गये। लोगों को तब मालूम हुआ कि बिहार का यह मौन तपस्वी कितना महान् और कितना भव्य है।

विदेश-यात्रा

वैसे तो विद्यार्थी-जीवन के बाद आपकी इच्छा विलायत जाकर बैरिस्टरी पढ़ने की हुई थी पर अनेक कारणों से वे ऐसा न कर सके थे, इसलिए उनकी विदेश-यात्रा १९२८ ई० तक रुकी रही, जब उन्हें एक मुकदमे के सिलसिले में विलायत जाना पड़ा। उस समय इंग्लैंड में मुकदमे का काम समाप्त कर आप जर्मनी, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड और इटली की सैर कर आये थे। इंग्लैंड में आप महात्मा गांधी की शिष्या और दीनसेविका कुमारी लिस्टर से मिले, मीरा बहन (मिस स्लेड) की माता लेडी स्लेड से भी आप मिले। जिन्होंने इनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। स्विट्जरलैण्ड में आप स्व० रोम्याँ रोलाँ से भी मिले। आस्ट्रिया में आप अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-विरोधी परिषद् में भारतीय प्रति निधि के रूप में सम्मिलित हुए। उन्हीं दिनों हालैण्ड से लौटकर

विश्वयुवक सम्मेलन में भी आप भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हुए और उसमें भाषण भी दिया। यूरोप की यात्रा में आपने कहीं भी अपनी वेशभूषा नहीं बदली—सर्वत्र शुद्ध खदर पहनते रहे।

अन्य विशेषताएं

राजेन्द्र बाबू—जो स्वाधीन भारत में 'डाक्टर आफ लॉ' की उपाधि से विभूषित हो चुके हैं, पहले जीवित श्रद्धा और मूर्तिमती सेवाओं के कारण 'देशरत्न' कहे जाते थे। इन्हें बिहार की शुभ्रतम विभूति, भारत का अद्वितीय रत्न कहा जा सकता है। संक्षेप में उनकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

(१) अपने विश्वास के प्रति उनमें अनुपम श्रद्धा है और ध्येय के प्रति दृढ़तम निष्ठा।

(२) सादा जीवन और उच्च-विचार के वे साक्षात् स्वरूप हैं।

(३) समष्टि के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान उनका आदर्श है।

आचार्य कृपलानी ने एक बार स्वयं कहा है कि "राजेन्द्र बाबू ही एक ऐसे नेता हैं जो साधुता में गाँधीजी के सब से निकट हैं।"



: चौदह :

जवाहरलाल नेहरू

भारतीय राजनीति का तीक्ष्णतम संचालक, आग-बबूला, चिर-तरुण, परम ओजस्वी, विकट शूर, क्रुद्ध, ज़िंदादिल, गौरवर्ण, तीव्र तथा विशाल दृष्टि और सतत् चेष्टाशील—यह है वीर जवाहर का चित्र। जिस वीर ने भारत की पराधीनता दूर कर उसे न केवल एशिया प्रत्युत सारे संसार में महत्वपूर्ण स्थान दिला दिया, वही है यह अनिन्द्य योद्धा, उग्र सेनानी और अधीर राजनीतिज्ञ। जवाहर का संक्षिप्त रूप-गुण-परिचय कहने की आवश्यकता नहीं। महात्मा गांधी के बाद भारतीय राजनीति में सब से अधिक सर्व-प्रियता प्राप्त करने वाला नेता जवाहर ही है।

जवाहर अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में संसार के प्रमुखतम राजनीतिज्ञों की श्रेणी में स्थान पा चुका है और उसके कारण आज भारत को संसार की सभी अन्तर्राष्ट्रीय महत्वपूर्ण विचार-सभाओं में स्थान मिलने लगा है और अंग्रेज़ों के प्रभुत्व काल में नितान्त उपेक्षित हमारा देश एक बार फिर संसार के प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों में परिगणनीय होने की स्थिति में आता जा रहा है।

एक ऊंचे घराने में पैदा होकर और सुख-समृद्धि में पले हुए जवाहर में दीन-हीनों के लिए तड़प कैसे जाग उठी। उसने पिता की अतुल कमाई और ऐश्वर्य का सुख-भोग न कर कांटों का ताज क्यों पहना और किस प्रकार अपने अप्रतिम त्याग और कष्ट-सहन द्वारा

गांधीजी के बताये हुए मार्ग पर राष्ट्र को चलाते हुए अन्त में उसे विदेशी जुए से मुक्त करने का कारण बना, इसका पूर्ण विवरण तो अगले पृष्ठों से मालूम हो सकेगा ; परन्तु यहां इतना बता देना आवश्यक है कि जवाहर के एक विशेष गुण ने ही उन्हें इस योग्य बनाया है कि वे एक इतने बड़े राष्ट्र का आज नेतृत्व कर रहे हैं, और वह अपने ध्येय के प्रति हद दर्जे की दृढ़ता।

राजनीति में प्रवेश

जवाहर ने राजनीति में किस प्रकार प्रवेश किया, यह एक विशेष दिलचस्प बात है। १९१२ ई० में वे पहले-पहल पटना कांग्रेस में सम्मिलित हुए। उस समय तक कांग्रेस में गर्मी नहीं आयी थी। फिर भी गोपाल कृष्णगोखले और लोकमान्य तिलक का इन पर प्रभाव पड़ा। गोखले के अनुरोध पर उन्होंने पचास हजार रुपये संग्रह कर दक्षिण-अफ्रीका के प्रवासी हिन्दुस्तानियों के लिए भेजे। उधर श्रीमती ऐनीबीसेन्ट ने होम रूल आन्दोलन शुरू कर दिया था जिससे मोतीलाल के साथ जवाहरलालजी ने भी उसमें भाग लिया। १९१९-२० ई० में अवध के किसानों में जागृति फैलाने के लिए भी आपने काम किया। पंजाब का हत्या-काण्ड और जलियांवाला बाग ने पिता-पुत्र दोनों को ही प्रबल राजनीतिक झंझावात में घसीट लिया।

इधर गाँधी जी एक प्रबल आंधी की तरह भारतीय राजनीति में प्रविष्ट हुए और १९२१ ई० में असहयोग आन्दोलन का शंख फूंक दिया, पं० जवाहरलालजी ने अपनी बैरिस्टरी छोड़ दी और इस आन्दोलन में कूद पड़े। १९२१ में उन्हें छः महीने के जेल की सजा दी गई और उसे भोगकर छूटने के बाद ही १९२२ ई० में विदेशी कपड़ों की दुकान पर धरना देते समय वह फिर गिरफ्तार किये गये और डेढ़ वर्ष के लिए सजा काटने को जेल भेज दिये गये।

१९२२ ई० में पं० जी प्रयाग म्युनिसिपैल्टी के अध्यक्ष चुन लिये गये पर उन दिनों म्यूनिसिपैल्टियों पर विदेशी सरकार का जैसा अधिकार था उसे स्वतंत्र प्रकृति जवाहरलाल सहन न कर सके और अपने पद से इस्तीफा दे दिया। म्यूनिसिपैल्टी से अवकाश मिलते ही पं० जी के सर पर एक और बोझ पड़ा क्योंकि आप अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के मन्त्री चुन लिये गये। इसी बीच सरकार ने महाराजा नाभा को पदच्युत करके निर्वासित कर दिया जिसके विरोध स्वरूप जैतों में सत्याग्रह चल पड़ा। सिख सत्याग्रही जत्थे के जत्थे जेल जा रहे थे। पं० जी तो सत्याग्रह के अनुरागी थे ही। वे स्थिति का निरीक्षण करने स्वयं जैतों पहुंच गये पर अभी घटना-स्थल पर पहुंचे ही थे कि एक प्रमुख अंग्रेज़ अधिकारी ने उन्हें सूचना दी कि वे तत्काल नाभा राज्य की सरहद से बाहर चले जायं। पं० जी ने उस अधिकारी को निर्भीक उत्तर दिया कि मैं सत्याग्रह करने नहीं देखने आया हूं; इसलिए आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। इस पर पं० जी गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें ढाई साल की सजा का हुक्म सुना दिया गया। पर दूसरे ही दिन उन्हें छोड़कर नाभा राज्य से चले जाने के लिए कह दिया गया। नाभा से लौटकर पं०जी डेढ़ महीने तक सख्त बीमार रहे।

१९२३ ई० में कोकोनाडा कांग्रेस अधिवेशन हुआ और इसी अवसर पर हिन्दुस्तानी सेवा दल की स्थापना हुई। इसमें भी पं० जी ने पूरी दिलचस्पी और लगन के साथ काम किया।

१९२६ ई० के आरम्भ में अपनी बीमार पत्नी कमला जी के रोग की चिकित्सा के लिए वे स्वीटज़रलैंड ले गये और इसी सिलसिले में १९२७ में जनेवा जाकर साम्राज्य विरोधी संघ के अधिवेशन में सम्मिलित हुए। १९२७ में सोवियट सरकार का निमंत्रण पाकर वे रूस भी गये और वहां के प्रजातंत्र का स्वरूप देखा।

स्वदेश लौट कर १९२८ ई० में प्यारे कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन

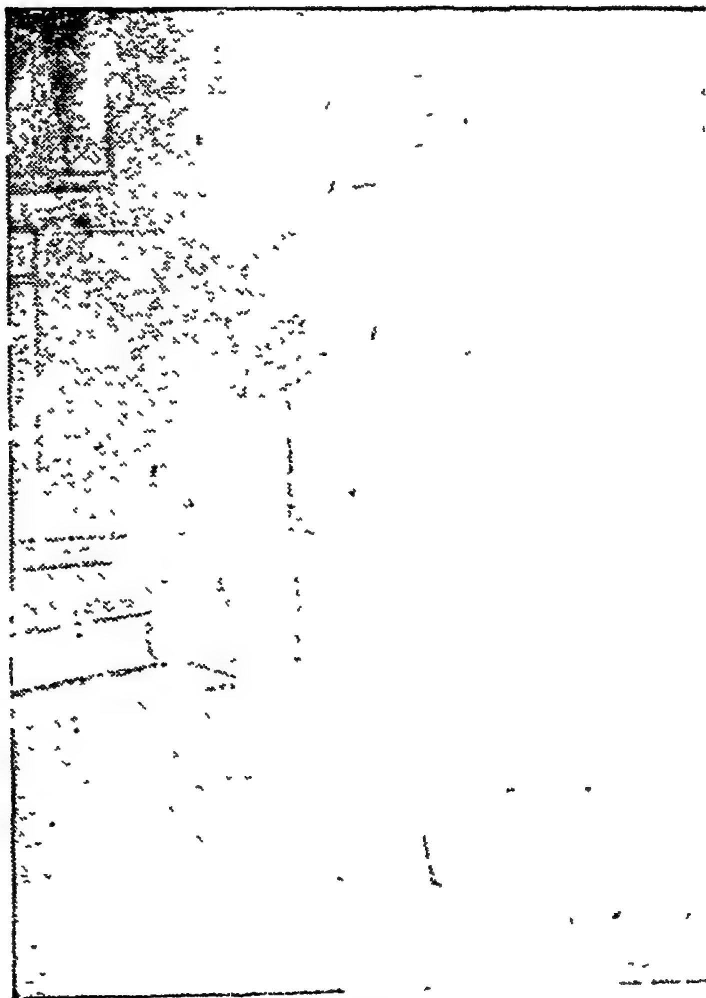
में सम्मलित हुए और उसके अध्यक्ष डा० अंसारी के अनुरोध पर एक बार फिर कांग्रेस का मंत्री-पद स्वीकार कर लिया। साइमन कमीशन के बहिष्कार की तैयारी इस मद्रास अधिवेशन में ही की गई थी। उसी वर्ष नागपुर में मजदूर कांग्रेस भी आपकी अध्यक्षता में हुई।

१९२९ में आपको लाहौर कांग्रेस का अध्यक्ष चुन लिया गया और तभी से कांग्रेस की बागडोर आपके हाथ में आगई। पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा पहले पहल रावी के तट पर आप ही की अध्यक्षता में हुई थी पर १९३० ई० में सत्याग्रह का शंख फिर बज उठा और उसके बाद महात्माजी का अनुसरण करते हुए देश के सारे नेता जेलों में पहुँच गये। पर दूसरे ही वर्ष सरकार ने फिर संधि करली जिसके परिणाम स्वरूप अन्य नेताओं के साथ आप भी जेल से छोड़ दिये गये पर जेल के बाहर आते ही उन्होंने अपने भाषणों और लेखों द्वारा वह बवन्डर खड़ा किया कि सरकार के लिए वह स्थिति असह्य हो गई और १९३१ में ही उन्हें गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया।

इस बीच देश में अनेक घटनायें हुई। साइमन कमीशन के बहिष्कार और महात्मा गांधी की डांडी यात्रा का देश पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। १९३६ ई० पं० जवाहरलाल जी लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष हुए और अगले वर्ष फैज़पुर में भी वे ही कांग्रेस के सभापति बने रहे।

इस बीच पं० जी ने सारे देश का तूफानी दौरा करके जनजागृति की एक लहर फैला दी और स्वाधीनता की भावना ऐसी प्रबल बना दी जिससे जनता अवसर मिलते ही अपनी सारी शक्ति लगा दे। नागरिक स्वाधीनता संघ भी आपने स्थापित किया और पन्द्रह मार्च सन् १९३७ ई० में दिल्ली के नेशनल कन्वेन्शन के सभापति हुए।

१९३८ की दसवीं जनवरी को आपकी पूज्य माता स्वरूप रानी का स्वर्गवास हो गया पर इस दुःख से व्याकुल होकर भी वह कर्त्तव्य से



जवाहरलाल नेहरू

विमुख न हुए और सीमाप्रांत तथा गढ़वाल के दौरे के लिए रवाना हो गये। इसी साल आपने भारतीय राजनीति के राहु मि० जिन्ना से हिन्दू-मुस्लिम समस्या के बारे में पत्र-व्यवहार किया और चीन को चिकित्सक शिष्ट मण्डल भेजने की व्यवस्था की।

१९३८ की दूसरी जून को पंडितजी युरोप यात्रा के लिए रवाना हुए और सोलह जून को स्पेनी प्रजातंत्र के अधिकारियों से भेंट की और बीस जून को पेरिस के रेडियो-घर से एक भाषण देकर सारे युरोप में तहलका मचा दिया। जून और जुलाई महीने में इन्होंने लंदन में वृटिश मंत्री, परराष्ट्र मंत्री, भारत मंत्री और वाइसराय आदि से मुलाकात की। वहां कई सार्वजनिक सभाओं में महत्वपूर्ण व्याख्यान देकर भारतीय समस्याओं से अंग्रेजों को अवगत किया। नवम्बर मास में आप युरोप यात्रा से पुनः भारत लौट आये।

१९३९ में भी आपने कई महत्वपूर्ण काम किये, जिनमें नेताओं से विचार-विमर्श, शान्ति-निकेतन में हिंदी भवन का उद्घाटन और देशी राज्यों की समस्या में दिलचस्पी आदि खास बातें थीं। इस वर्ष लुधियाने में जो देशी राज्य-प्रजा-परिषद् हुई उसकी अध्यक्षता का भार भी आप पर ही पड़ा। इस वर्ष कांग्रेस अधिवेशन, त्रिपुरी (मध्यप्रांत) में हुआ और अध्यक्ष पद के प्रश्न पर सारे देश में एक प्रकार की फूट और विक्षोभ का वातावरण पैदा हो गया। फिर भी पूर्ववर्ती वर्ष (१९३८) की भांति इस वर्ष भी सुभाष बाबू ही कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। पं० जवाहरलाल जी ने दलबन्दी और वैमनस्य को दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न किया। इसी वर्ष राष्ट्र-निर्माण समिति (नेशनल प्लानिंग कमेटी) का जन्म भी पं० जवाहरलाल नेहरू की ही अध्यक्षता में हुआ। जिसके अन्तर्गत ३१ उपसमितियां बनाई गईं और प्रत्येक के लिए एक-एक विशेषज्ञ चुन दिया गया। इसी वर्ष गर्मी में पंडित जी ने सीलोन (लंका) की यात्रा करके वहां के प्रवासी भारतीयों की समस्या हल करने का प्रयत्न किया।

महायुद्ध और उसके बाद

१९३९ में उस विनाशक युद्ध का श्रीगणेश हो गया जिसके कारण आधुनिक सभ्यता आदि भी लँगड़ी, लूली और विकलांग होकर पड़ी थी। उन दिनों सारे संसार में—विशेषतः युरोप में भय, शंका, निराशा और क्षोभ का वातावरण छाया हुआ था। इसलिए पं० जवाहरलालजी उस समय देश से बाहर नहीं जाना चाहते थे। परन्तु उस चीन के निमंत्रण को वे न टाल सके जो बहुत दिनों से अनुरोधपूर्वक उनके पास आ रहे थे। अन्ततः अगस्त में आप वायुयान द्वारा चुंकिंग पहुंचे ही थे कि युरोप में युद्ध के बादल बरस पड़े। चीन में वीर जवाहर का अभूतपूर्व स्वागत हुआ और उन्होंने जनरल च्यांगकाई शेक और चीन के अन्य नेताओं को भारत के सहयोग, सद्भाव तथा मित्रता का सन्देश दिया।

पर युरोप में लड़ाई छिड़ चुकी थी और ब्रिटिश सरकार ने भारतीय व्यवस्थापिक सभा और प्रांतीय सरकारों अथवा जनमत का परामर्श और सहयोग प्राप्त किये बिना ही इस देश को भी इस युद्ध में घसीट लाया। इस पर वीर जवाहर, तिलमिला उठे और सितम्बर महीने में उनकी प्रेरणा से कांग्रेस कार्य-समिति ने एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उसने अपनी पूर्ववर्ती और वर्त्तमान नीति की व्याख्या करते हुए ब्रिटिश सरकार से मांग की कि वह अपने युद्धोद्देश्य, विशेष कर ब्रिटिश साम्राज्य और भारत की स्वाधीनता, युद्ध-सम्बन्धी घोषणा स्पष्ट रूप से कर दे, पर ब्रिटिश सरकार अपनी नीति स्पष्ट करने वाली कब थी। उसका दर्रा पूर्ववत चलता रहा जिसके विरो स्वरूप कांग्रेस ने १९३५ के इण्डिया एक्ट को स्वीकार करते हुए प्रांतों में जो मंत्रिमण्डल बनाये थे, उनके स्तीफे देकर विधान स्थगित कर दिया और प्रांतों में फिर गवर्नरी शासन चल पड़ा। नये-नये काले कानून जारी किये गये और कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारी।

होने लगीं। राष्ट्र इस दमन का जवाब देने को तैयार था पर शत्रु को भी कष्ट में डालने की इच्छा न रखने वाले महात्मा गांधी ने इंग्लैण्ड की बढ़ती हुई राजनैतिक कठिनाइयों से अनुचित लाभ नहीं उठाया। देखते ही देखते बड़े-बड़े साम्राज्य टूटकर चकनाचूर हो गये और [illegible] एवं सामंजस्य शून्य घटनायें होने लगी। रूस-जर्मनी में [illegible] हुआ और रूस ने फिन्लैंड पर आक्रमण कर दिया। युद्ध की भीषणतायें बढ़ती ही गईं। १९४७ के अप्रैल मास में नार्वे का पतन हुआ। मई महीने में हालैंड और बेलजियम भी अपनी राह लगे और [illegible] में फ्रांस की पराजय हो गई। इन सब घटनाओं का असर भारत पर भी पड़ना ही था। गांधीजी कांग्रेस कार्यसमिति से यह चाहते थे कि वह अहिंसा को मानते हुए किसी युद्ध में किसी भी प्रकार का भाग न लेने का निश्चय करे पर कार्यसमिति के अन्य सदस्य [illegible] इतनी दूर जाने को तैयार न थे, इस पर गांधीजी ने कार्यसमिति को छोड़ दिया और उसे अपने विवेकानुसार चलने की स्वतन्त्रता दे दी। श्री राजगोपालाचार्य ने कांग्रेस को प्रेरित किया कि वह [illegible] के सामने एक और प्रस्ताव रखे जिसका आशय इस प्रकार था—[illegible] भारत की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ले और केन्द्र में तुरन्त ऐसी अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बना दे जो वर्तमान केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा-[illegible] के प्रति जिम्मेदार हो। इतना हो जाने पर देश की रक्षा का उत्तरदायित्व यह सरकार ले लेगी और लड़ाई के प्रयत्नों में सहायक होगी।

पर बृटिश सरकार ने यह प्रस्ताव भी ठुकरा दिया। इस पर [illegible] ने गांधीजी को सत्याग्रह-युद्ध पुनः आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। गांधीजी ने अपनी पूर्व नीति के अनुसार [illegible] साल तक [illegible] शिथिल और सीमित गति से व्यक्तिगत सत्याग्रह का संचालन किया पर युद्ध-काल होने के कारण उसे भीषण रूप नहीं मिला। [illegible] बृटिश सरकार को एक गुप्त [illegible] लेकर सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत भेजे पर चूंकि बृटिश सरकार भारतीयों को राष्ट्र-रक्षा विभाग सौंपने को तैयार

न थी, इसलिए कोई समझौता न हो सका। इसी बीच १९४२ का वह समय आ पहुंचा जब भारतीय कांग्रेस कमेटी ने पुनः महात्मा गाँधी को नेतृत्व का संपूर्ण भार सौंप दिया और पूर्ण शासनाधिकार अविलम्ब भारतीयों के हाथ में दे देने का अनुरोध किया। सरकार ने फिर दमनचक्र चलाया। कांग्रेस गैर कानूनी घोषित कर दी गई। प्रबल क्रांति की लहरें सारे देश में परिव्याप्त हो गईं और भारत छोड़ो का नारा बुलंद करते ही सारे नेताओं को गिरफ्तार करके नजरबन्द कर दिया गया।

लड़ाई के दौरान में १९४५ तक यह नेता जेलों में ही सड़ते रहे पर १९४५ में ब्रिटिश सरकार को बाध्य हो इन्हें छोड़ना पड़ा। इस बीच आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों—शाहनवाज, गुरुबख्शसिंह ढिल्लन, प्रेमकुमार सहगल, तथा झांसी कीरानी रेजीमेण्ट की अध्यक्षा डा० लक्ष्मी स्वामीनाथन् के ऊपर चलाये गये मुकदमे की पैरवी के लिए पं० जी पुनः एक बार लाल किले की कोर्ट में गाउन पहन कर खड़े हुए। मौलाना आज़ाद फिर राष्ट्रपति चुने गये। समझौते का नया द्वार खुला। पं० जवहारलाल नेहरू ने राजनीतिक प्रश्नों पर सोचने का सार्वभौम और मानवीय दृष्टिकोण फिर जनता के समक्ष रखा। बृटिश मंत्रिमण्डल समझौते की चर्चा करने भारत आया और सभी विचार तथा श्रेणी के नेताओं से मिल कर उसने राजनीतिक ज़िच दूर करने का प्रयत्न किया। किन्तु अंग्रेज जाति अपनी विशेषता मरते दम तक नहीं छोड़ सकती। इसका प्रमाण इन ब्रिटिश राजनैतिक बृशेषज्ञों ने स्पष्ट रूप से दे दिया। वे इस देश से गये पर इसको विभाजित करके फूट का एक ऐसा बीज बो गये जिसका फल चख कर लाखों ही को अपने प्राण, धन और सर्वस्व से हाथ धोना पड़ा।

पं० जवाहरलाल नेहरू बृटेन की इस चालबाजी को समझते थे परन्तु वे साथ ही अपने देश की स्थिति और दुर्बलता से भी अपरिचित नहीं थे, इसलिए उन्होंने विष की यह कड़वी घूँट पी ली।

वे जानते थे कि बिना कुछ त्याग किये आजादी नहीं मिल सकती। इसलिए उन्होंने अपने करोड़ों भाइयों की जान खतरे में डाल कर भी आजादी हासिल कर ली और आज इस लहू-लुहान, अंग-भंग और आहत देश को फिर से उठा कर खड़ा करने के लिए प्रधान मंत्री का पद स्वीकार कर कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं।

कुछ विशेषताएं

बचपन से ही अंग्रेज़ी समाज में रहकर और अंग्रेज अध्यापकों से ही शिक्षा प्राप्त करके पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारतीयता नहीं छोड़ी और स्वर्गोपम सुख भोगने पर भी देश की दरिद्रता की ओर दुर्लक्ष्य नहीं किया। जन के प्रति उनका दृष्टिकोण प्राच्य और पाश्चात्य दोनों ही विचार-धाराओं का एक संमिश्रण-सा बन गया है। उनमें नवीनतम वैज्ञानिक शोध के उपयोग का भी महत्व है और प्राचीनतम भारतीय कलात्मक विद्याओं के सृजन के प्रति भी स्नेह है। वह बुद्धि और सिद्धान्त से समाजवाद के कायल हैं पर जन्म और समाज के वातावरण का जो प्रभाव उनके जीवन में भरा हुआ है उस के कारण वे न तो अपनी रईसी प्रकृति ही छोड़ सकते हैं और न पाश्चात्य जीवन शैली। उनकी विचार-धारा में ऐसे असंगत-स्रोत आ आकर मिले हैं जिनके कारण उनका विश्लेषण बहुत कठिन हो जाता है और कम-से-कम जन-साधारण उसकी सूक्ष्मताओं को समझने में असमर्थ हो जाता है। किन्तु इन [illegible] के होते हुए भी भारत का यह सर्वप्रिय नेता किसानों और मजदूरों के दुख-दर्द को समझता है और उनके आँसू पोंछने का प्रयत्न भी करता है।

भारतीय राजनीति के इन तीस वर्षों में न तो जेल के कष्ट ही उनके उत्साह को ठण्डा कर सके और न [illegible] खतरों का आतंक ही उन्हें उनके पथ से विचलित कर सका।

लक्ष्य को पहिचानते ही उसमें तन्मय होकर आत्माहुति दे देना जवाहर की विशेषता है और वह जिस प्रकार अपने आदर्शों [illegible]

सदा प्रस्तुत मिले हैं, उसी भांति अपने सहयोगियों और सहकारियों से काम लेने में कठोर अनुशासन का पालन करते हैं। उनके निकटतम लोग भी उनसे कांपते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि जवाहर के साथ काम के लिए लगन, दृढ़ता; वीरता, गम्भीरता और अनुशासन की अनवरत आवश्यकता होती है क्योंकि जवाहर काम करना भी जानते हैं और काम लेना भी।

जवाहर का दृष्टिकोण व्यापक और सार्वभौम है। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का भारत पर प्रभाव पड़ने की वर्षों में कही है और तब कही है जब लोगों को उसका आभास भी नहीं मिला था। आज वही बात प्रत्यक्ष होकर रही हैं।

संसार प्रसिद्धतम राजनीतिज्ञों में हमारे जवाहर का एक विशेष स्थान है। उनका लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय और ध्येय विश्वशांति होने के कारण उनके विचारों का समादर सभी देशों के नेता और राजनीतिज्ञ समान रूप से करते हैं।

उन्होंने न केवल हिन्दुस्तान प्रत्युत सारे एशिया और अखिल विश्व की समस्याओं को सुलझाने के लिए वह दृढ़ कदम उठाया है जो कभी पीछे हटने वाला नहीं है और जो मानवता को उस कल्याण मार्ग पर ले जानेवाला है जिस पर चलकर वह समृद्धि, शांति, सुख और अध्यात्मिक-उच्चता प्राप्त कर सकती है।

वंश और जन्म

पं० जवाहरलाल नेहरू कश्मीरी ब्राह्मण वंश के हैं। उनके खानदान की पुरानी अटक 'कौल' थी। अब से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व कश्मीर से इनके पूर्वज दिल्ली आये थे। जब दिल्ली में शाह फर्रुखसियर का राज्य था तो उन्होंने अपनी कश्मीर-यात्रा में एक प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ विद्वान् पं० राजकौल से परिचय प्राप्त किया था और पीछे उन्हें दिल्ली

में ही ला बसाया था। वर्तमान चांदनी चौक में उन दिनों नहर थी और उस नहर के किनारे ही पं० राजकौल के लिए कोठी बनवा दी और जागीर आदि दी। इसलिए इस कश्मीरी ब्राह्मण खानदान वालों को 'कौल नेहरू' (नहर के निकट वाले) नाम पड़ गया। पीछे केवल 'नेहरू' अल्ल इतनी विख्यात् हो गयी कि कौल की अल्ल सब भूल ही गये।

इसी नेहरू परिवार में पं० जवाहरलाल नेहरू के पितामह—पं० गंगाधर नेहरू का जन्म हुआ जो १८५७ ई० के गदर के कुछ ही पहले तक दिल्ली के शहर-कोतवाल थे। शाही दरबार में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनकी वेशभूषा भी शाही ढंग की थी और व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली।

१८५७ ई० के गदर में जो उथल-पुथल मची उसके फलस्वरूप पं० गंगाधर अपने दो पुत्रों और छोटी बहन के साथ दिल्ली छोड़कर आगरे चले गये। यहीं ६ मई १८६१ ई० पं० मोतीलाल नेहरू का जन्म हुआ। इनका जन्म होने के केवल दो मास पूर्व प० गंगाधर नेहरू का स्वर्गवास हो चुका था इसलिए बालक मोतीलाल का लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा उनकी माता जियो-बीबी और दोनों भाई बंसीधर तथा नन्दलाल की देख-रेख में हुई। पं० बंसीधर नेहरू तो सरकारी न्याय विभाग में नौकर हो गये जिससे उन्हें घर से प्रायः अलग रहना पड़ता था और छोटे भाई खेतड़ी रियासत (जयपुर राज्य) के दीवान हो गये। पं० मोतीलाल ने अपने बचपन के कुछ दिन उनके साथ खेतड़ी में गुज़ारे थे। बाद में बड़े भाई पं० बंसीधर वकालत पास करके आगरे में रहकर प्रेक्टिस करने लगे। पर थोड़े ही दिनों बाद हाईकोर्ट आगरे से उठकर इलाहाबाद आ गया तो वे भी अपने परिवार के सभी लोगों सहित, जिनमें प० मोतीलाल भी थे, इलाहाबाद आकर मीरगंज मुहल्ले में रहने लगे।

पं० मोतीलाल शरीर से हृष्ट-पुष्ट और खिलाड़ी थे; पर पढ़ने में इतने तेज कि जितने और लड़के एक हफ्ते में पढ़ते उतना वे एक ही दिन में याद कर लेते। उन्होंने बी०ए० पास करने के बाद वकालत परीक्षा भी बड़े सम्मान के साथ पास की और उन्हें स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ।

कुछ दिनों तक तो पं० मोतीलाल नेहरूने कानपुर में वकालत की; पर बाद में इलाहाबाद आकर अपने भाई पं० नन्द नेहरू के साथ ही वकालत करने लगे। थोड़े ही दिनों में पं० मोतीलाल नेहरू इलाहाबाद के नामी वकीलों में हो गये। उनके भाई पं० नन्दलाल नेहरू का स्वर्गवास हो जाने पर परिवार के पालन का सारा भार ऽ पड़ा। किन्तु वकालत ऐसी चली कि धन से घर भर गया। और उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई।

जन्म और बाल्यकाल

पण्डित जवाहरलाल नेहरू का जन्म प्रयाग (इलाहाबाद) के मीरगंज मुहल्ले में १४ नवम्बर १८८९ ई० को हुआ था। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उनके पिता पं० मोतीलाल नेहरू हिन्दुस्तान के नामी वकील हो चुके थे। उनकी माता का नाम श्रीमती स्वरूपवती-रानी था।

पं० मोतीलाल नेहरू प्रसिद्ध वकील, तेजस्वी नेता, विख्यात् वाग्मी और रईस थे। उनकी पहली पत्नी का स्वर्गवास हो चुका था और पहली सन्तान का भी, इसलिए उन्होंने बालक जवाहर को, जिनका बचपन का नाम 'नन्हा' था, बड़े ही लाड़ प्यार और राजसी ठाट-बाट के साथ पाला था।

बालक जवाहर के पिता पं० मोतीलाल कमाना और खर्च करना दोनों जानते थे। वे पुराने रईसों की भाँति बड़े ही मनचले और

दरियादिल थे। उनका मिलना-जुलना और उठना-बैठना उच्चतम सरकारी अधिकारियों के साथ था। उन्होंने आनन्द भवन नामक एक ऐसा विशाल भवन बनवाया जो बाद में राष्ट्र की सम्पत्ति बनकर सारे देश में विख्यात् हो गया। बाल जवाहर की क्रीड़ा भूमि यह आनन्द-भवन ही था। उनकी आरम्भिक शिक्षा—६ से १७ वर्ष तक घर पर ही हुई और इन्हें घुड़सवारी, तैराकी, फुटबाल और टेनिस आदि खेलने की शिक्षा दी गयी। १२ वर्ष की अवस्था में इन्हें पढ़ाने के लिए श्री एफ० टी० ब्रुक्स नामक अंग्रेज थियासोफिस्ट नियुक्त हुए। साथ ही उन्हें गवर्नमेन्ट हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री गार्डन नामक दूसरे अंग्रेज भी पढ़ाने लगे। यद्यपि बाद में शिक्षक श्री ब्रुक्स अलग हो गए; पर उनकी आरम्भिक शिक्षा का बालक जवाहर पर जो प्रभाव पड़ा था, वह अब तक मौजूद है।

पं० मोतीलाल पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा के ही अनुगामी थे और उन्हें वही ठाट-बाट पसन्द था इसलिए जब आप १९०५ ई० में विलायत जाने लगे तो किशोर जवाहरलाल को भी वहीं पढ़ाई के लिए भर्ती करने के विचार से ले गये। वहाँ उन्होंने लन्दन के अमीरों के हैरो स्कूल में भर्ती करा दिया। दो वर्ष में स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर जवाहरलाल कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज में भर्ती हो गये। वहाँ उन्होंने जंतु-विज्ञान (जियोलोजी) वनस्पति विज्ञान (बोटानी) और रसायन शास्त्र (केमिस्ट्री) के विषय लेकर १९०८ ई० में बी० ए० की परीक्षा पास कर ली। उनकी योग्यता पर मुग्ध हो कालेज के अध्यापकों ने एम० ए० (आनर्स) की उपाधि बिना परीक्षा लिये ही दे दी। लंदन में जवाहर के साथ पढ़ने वाले हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों में एक ओर तो कपूरथला के और बड़ौदा के राजकुमार थे तो दूसरी ओर शाह सुलेमान (इलाहाबाद) हाईकोर्ट के भू० पू० प्रधान न्यायाधीश, सर्वश्री स्व० शेरवानी, डा० सैफुद्दीन किचलू और स्व० यतीन्द्रमोहन सेन गुप्त थे, जिन्होंने आन्दोलन का

तंत्रता-संग्राम में अद्भुत वीरता के साथ भाग लिया।

कालेज की शिक्षा पूरी कर विद्यार्थी जवाहरलाल 'इनर टेम्पल' में वैरिस्टरी पढ़ने के लिए भर्ती हो गए और १९१२ ई० में वह परीक्षा भी पास करली ।

स्वदेश लौटने पर १९१६ ई० में दिल्ली के कौल परिवार की न्या कमला के साथ पं० जवाहरलाल नेहरू का विवाह बड़ी धूम-धाम से हो गया। १९२१ ई० तक जवाहरलाल अपने पिता के साथ वैरिस्टरी की प्रेक्टिस करते रहे ।

इसके बाद वे किस प्रकार राजनीति में प्रविष्ट हुए और अन्य सभी विचारों को छोड़ देशहित के चिंतन में लग गए इसका विस्तृत वर्णन पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं ।

: पन्द्रह :

सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन्

डा० सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन् भारत के वह प्रतिभावान् नागर् विज्ञानवेत्ता हैं जिन्होंने नोबल-पुरस्कार प्राप्त करके सारे विश्व में पहले ख्याति प्राप्त कर ली और पीछे अपने देश में विख्यात हुए।

डा० सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन् को संक्षेप में सर सी० वी० रामन् भी कहते हैं, इनका जन्म मद्रास प्रेसीडेन्सी के त्रिचनापल्ली नामक स्थान में १७ नवम्बर १८८८ ई० में हुआ था। इनके पूर्वज साधारण किसान थे मुख्यतः खेतीबाड़ी करते थे। इनके पिता चन्द्रशेखर अय्यर पुत्र-जन्म के समय स्थानीय हाईस्कूल में शिक्षक थे। विद्या की भूख बहुत थी इसलिए हाईस्कूल में नौकरी करते हुए बी० ए० की परीक्षा देने की तैयारी भी कर रहे थे।

सर वेंकट रामन् की माता का नाम था श्रीमती पार्वती अम्माल और वे त्रिचनापल्ली के एक विद्वान् संस्कृतज्ञ ब्राह्मण परिवार की कन्या थीं।

वेंकटरामन् के जन्म के बाद उनके पिता बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण भी हो गये और स्थानीय कालेज में अध्यापक भी नियुक्त हो गये। श्री चन्द्रशेखर अय्यर भौतिक-विज्ञान और संगीत शास्त्र के बड़े प्रेमी थे। पिता के कारण पुत्र को भी संस्कृति और संगीत से प्रेम हो गया।

आरम्भिक जीवन

बालक वेंकट रामन् के पिता १८९२ ई० में विजिगापट्टम् के हिन्दू कालेज में भौतिक-विज्ञान के व्याख्याता नियुक्त हो गये। बालक वेंकट रामन् ने विजिगापट्टम् के सुन्दर समुद्र-तट पर ही विशेष प्रकृति-प्रेरणा प्राप्त की जिससे उसकी अध्ययन की मनोवृत्ति विशेषरूप से विकसित हुई। बालक वेंकट रामन् पर वहाँ के हिन्दू कालेज के आचार्य प्रिंसिपल आयंगर की भी कृपादृष्टि हो गई और वह अपने पिता तथा प्रिंसिपल साहब की देखरेख में विद्याध्ययन करने लगा। प्रिंसिपल साहब अंग्रेजी के प्रकाण्ड विद्वान् थे इसलिए उनके संसर्ग में बालक रामन् को थोड़ी ही अवस्था में अंग्रेजी भाषा पर असाधारण अधिकार हो गया। हाईस्कूल की कक्षाओं में ही उसने भौतिक विज्ञान के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन श्रीआयंगर के संसर्ग से समाप्त कर लिया। बारह वर्ष की आयु में ही रामन् ने मैट्रिक परीक्षा ससम्मान पास कर ली और कालेज में भर्ती हो गया।

इस बारह वर्ष की अवस्था में ही श्रीमती एनीबीसेण्ट का भाषण सुनकर बालक रामन् ने धार्मिक ग्रंथों का भी अध्ययन कर डाला। बालक की असाधारण उत्सुकता और क्षमता देखकर सभी पार्श्ववर्ती उससे प्रभावित हो उठे। सब उसे आश्चर्य पूर्वक देखते। किंतु धार्मिक अध्ययन करते हुए भी उन्होंने विज्ञान के प्रति अपनी स्वाभाविक रुझान कम नहीं की।

एफ० ए० की परीक्षा पास करने के अनंतर बालक रामन् मद्रास के प्रेसीडेंसी कालेज भेज दिये गये। अल्पावस्था में परिपक्व ज्ञान देखकर सभी प्रोफेसर आप पर चकित थे। उस समय बालक रामन् की अल्पावस्था देखकर कोई उसे बी० ए० का छात्र स्वीकार करने को तैयार न होता था। प्रोफेसर इलियट इस चतुर्दश वर्षीय बालक के कृश-

काय, चमकीले नेत्र और असाधारण मेधाशक्ति पर आश्चर्य प्रकट करते थे।

बी० ए० में कुछ लोगों ने उन्हें इतिहास के अध्ययन का परामर्श दिया; पर विज्ञान का प्रेमी भला दूसरी ओर क्यों जाता, उन्होंने अपना विज्ञान विषय ही लिया और कालेज के पुस्तकालय की भौतिक-विज्ञान-संबंधी प्रायः सभी पुस्तकें पढ़ डालीं। उनकी ज्ञान-पिपासा देखकर सभी दंग थे। किंतु प्रयोगों की ओर प्रोफेसर कोई ध्यान न देते थे, यह देख बालक रामन् को आश्चर्य और कष्ट होता था। भौतिक-विज्ञान के साथ बालक रामन् ने गणित और यंत्र-विज्ञान की भी शिक्षा प्राप्त की।

१९१४ ई० में वेङ्कटरामन् ने विश्व-विद्यालय की बी० ए० परीक्षा सम्मान-पूर्वक पास की। आप ही विश्वविद्यालय के सर्वोच्च परीक्षार्थी सिद्ध हुए, इसलिए विश्वविद्यालय ने आपको पारितोषिक और पदक प्रदान किया।

बी० ए० के बाद विद्यार्थी रामन् ने एम० ए० की परीक्षा भी इसी कालेज में और वही विशिष्ट विषय भौतिक-विज्ञान लेकर पास की। इन्हीं दिनों आपने प्रयोग करने का अवसर प्राप्त किया और भौतिक-विज्ञान की योग्यता विशेषरूप से बढ़ा ली। भौतिक-विज्ञान के अन्वेषणों पर लेख भी आप उन्हीं दिनों लिखने लगे जो लंदन से प्रकाशित होने वाली प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे।

अन्वेषण-कार्य

वेङ्कट रामन् ने जिन विषयों के प्रयोग की ओर विशेष ध्यान दिया उनमें एक था वर्णपट मापक या 'स्पेक्ट्रोमीटर'। इसके प्रयोग के समय आपको कुछ नूतन बातें परिलक्षित हुईं। आपने उन बातों की विशेष छान-बीन कर जो निष्कर्ष निकाला उसे आपने निबन्धरूप में प्रकाशित

कराया। केवल अठारह वर्ष की अवस्था में जिस बालक का लेख लंदन की विख्यात् वैज्ञानिक पत्रिका में प्रकाशित हो जाय उसकी विद्वत्ता को प्रशंसा कौन नहीं करेगा। रामन् की धाक् जम गई। उनके एक मित्र सहपाठी ने प्रोफेसर जोन्स से जो शंकाएं की उसका संतोषजनक उत्तर जब वे नहीं दे सके और वेंकटरामन् ने उन्हें सन्तोषजनक रीति से समझा दिया तो लोग बड़े आश्चर्य में पड़ गये।

रामन् ने अब स्वतंत्र रूप से प्रयोग आरम्भ कर दिये थे। लार्ड रैले के शब्द-विज्ञान सम्बंधी सिद्धांतों का भी उन्होंने भली-भांति अध्ययन किया और प्रयोग की गणना आदि के पश्चात् इस परिणाम पर पहुंचे कि नवीन प्रयोग विख्यात् मेल्डी-प्रयोग की एक नूतन विधि-मात्र है। कई बार प्रयोगों को दुहराने और परिणामों की सावधानी के साथ जांच करने पर यह सिद्ध हो गया कि नई विधि के द्वारा मेल्डी-विधि की अपेक्षा अधिक शुद्ध परिणाम प्राप्त होते हैं। मेल्डी-प्रयोग की अपेक्षा यह नवीन एवं संशोधित-परिवर्तित विधि शीघ्र ही विज्ञान-जगत् में विख्यात् हो गई। इस विधि के लिए विश्व के सर्व-विख्यात् वैज्ञानिक लार्ड रैले ने स्वयं रामन् की प्रसंशा की थी।

इस प्रकार भारत के एक बाल-वैज्ञानिक ने संसार के समक्ष प्रकाश और शब्द विज्ञान पर मौलिक विचार प्रस्तुत कर दिये जिससे यह सिद्ध हो गया कि आगे चलकर उस दिशा में यह आधुनिक शुकदेव भारत का नाम अवश्य करेगा। सारे संसार में यह एक नई बात थी कि १६-१७ वर्ष का विद्यार्थी वैज्ञानिक शोध द्वारा सूक्ष्मतम श्रेणी का अध्ययन कर मौलिक निष्कर्ष संसार के सामने रखे।

१६०७ ई० में श्री रामन् ने एम० ए० की परीक्षा में विश्व-विद्यालय का रेकार्ड तोड़ दिया। भौतिक-विज्ञान में न तो उनके पहले ही सारी यूनिवर्सिटी में कभी किसी विद्यार्थी को उनसे अधिक अंक प्राप्त हुए थे; न बाद में ही मिले।

इसके पश्चात् भौतिक-विज्ञान का विशेष अध्ययन करने के लिए आपने विलायत जाने का विचार किया, पर स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण जा न सके। किन्तु इसी साल भारत-सरकार के अर्थ-विभाग की प्रतियोगिता-परीक्षा भी आपने दे दी जिसमें सारे भारत में आपका प्रथम स्थान रहा। तब तक आपकी अवस्था तीस वर्ष की भी न हो पायी थी, फिर भी भारत-सरकार ने आपकी योग्यता पर मुग्ध हो आपको डिप्टी एकाउन्टैंट जनरल के पद पर नियुक्त कर दिया। इतनी कम अवस्था में आजतक कोई भी व्यक्ति इतने उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त नहीं हुआ।

नौकरी लगते ही आपका विवाह हो गया। नौकरी करते हुए भी आपने वैज्ञानिक अनुशीलन और प्रयोग का काम नहीं छोड़ा। सरकारी अफसरों का कार्यभार पूर्णतः संभाल कर भी उन्होंने विज्ञान के अपने अधूरे अन्वेषणों में मस्तिष्क लगाना जारी रखा। कलकत्ते में कार्य करते समय आप भारतीय विज्ञान परिषद् (इंडियन एसोसियेशन फार दि कल्टिवेशन आफ साइन्स) के संस्थापक स्वर्गीय डा० महेन्द्रलाल सरकार, सर आशुतोष मुकर्जी आदि के सम्पर्क में आये और इस संस्था को सहयोग प्रदान किया। एसोसियेशन की ओर से विज्ञान-प्रेमियों की ओर आपको एक सुव्यवस्थित प्रयोगशाला की आवश्यकता थी। दस वर्ष कलकत्ते में रहकर आपने इस संस्था को काफी उन्नत बना दिया।

१९१४ ई० में सर आशुतोष मुकर्जी ने सर तारकनाथ पालित और डा० रासबिहारी घोष की सहायता से कलकत्ते में साइंस कालेज की स्थापना की। सर आशुतोष का ध्यान उस कालेज के आचार्य पद के लिए श्रीयुत् रामन की ओर आकर्षित हुआ। उनके आमंत्रित करने पर उच्च-सरकारी पद छोड़कर भी विज्ञान की सेवा करने के विचार से श्री रामन् ने भारत के इस अपने ढंग के सर्वप्रथम कालेज के आचार्य का पद ग्रहण कर लिया।

डा० रामन का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक कार्य 'रामन प्रभाव' (रिम्यार्क

ग्राफ़ रामन् एफेक्ट) की खोज है। इस आविष्कार की गणना संसार के उत्कृष्टतम वैज्ञानिक आविष्कारों में की जाती है। सारे संसार के वैज्ञानिक रामन् के इस अन्वेषण के कारण ही उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं और उनकी गणना विश्व के उच्चतम विज्ञानाचार्यों में करते हैं। डा० रामन् के इस आविष्कार की उच्चता और उपयोगिता गणितशास्त्री, भौतिक-विज्ञान-विशारद तथा रासायनिक—अर्थात् तीनों ही श्रेणियों के वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं।

डा० रामन् का दूसरा महत्वपूर्ण आविष्कार है कम्पन और ध्वनि (वाइब्रेशन ऐण्ड साउण्ड) जिसकी इस काल की महत्वपूर्ण खोज है वाद्य यंत्र के सिद्धान्त, जिनमें अपने भारतीय वाद्ययंत्रों में वीणा, तानबूरा, मृदंग और विदेशी वाद्य यंत्रों में वायोलिन, सीतो और पियानो आदि हैं। इन वाद्य-यंत्रों के शाब्दिक गुणों का आपने विशेष अध्ययन किया और बहुत-सी नई तथा रोचक बातें मालूम कीं। इस विषय में आप संसार के सर्वश्रेष्ठ और प्रामाणिक अधिकारी माने जाते हैं।

किंतु आपको जगत्प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार 'रामन् प्रभाव' के कारण मिला है। रामन् प्रभाव का अर्थ यह है कि प्रकाश का रंग परिक्षेपण द्वारा बदला जा सकता है। सूर्य के प्रकाश में अथवा अन्य साधारण श्वेत प्रकाश में कई रंगों की किरणें होती हैं। ये रंग शीशे के त्रिपार्श्व में जाने देने से पृथक् हो सकते हैं। इस पृथक्करण क्रिया से इंद्रधनुष जैसी रंगों की पट्टी बन जाती है। इससे हम उस परिणाम पर पहुँचते हैं कि परीक्षा के समय प्रकाश के रंगों में भी परिवर्तन हो जाता है। परीक्षित प्रकाश में जो किरणें दिखायी पड़ती हैं वे 'रामन् किरणें' कहलाती हैं। ये किरणें भौतिक और रासायनिक विज्ञानों के लिए पदार्थ का चरम संगठन मालूम करने के लिए सरल और महत्वपूर्ण सामग्री उपस्थित करती हैं।

312

———